श्रीः ।

आल्वारचरितामृत ।

पञ्जाप देशीय पं० सुदर्शनदासानुवादित ।

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस;

कल्याण-मुम्बई.

संवत् १९८९, शके १८५४.

श्रीवेङ्कटेशाय नमः ।

प्रस्तावना ।

हे श्रीकृष्णपदपद्ममकरंदास्वाद निपुण सज्जन शिरोमणे पाठकगण ! इस जीवको शास्त्रकार पुरुष कहते हैं सांसारिक अनेक प्रकारके दुःख भोगनेका यही फल है कि, कभी न कभी यह पुरुष पुरुषार्थको प्राप्त हो। पुरुषार्थ भगवत्पदप्राप्तिको कहते हैं जिसके मोक्ष इत्यादि अनेक पर्याय नाम हैं। पुरुषार्थ नित्य होनेसे यद्यपि उसका कारण कुछ नहीं तथापि उसका प्रयोजक अवश्य है। कारण और प्रयोजकमें कुछ भेद है। उस पुरुषार्थका प्रयोजक कोई ज्ञानको, कोई भक्तिको, कोई ज्ञानभक्ति दोनोंको बताते हैं। भक्तिमार्गानुयायी तो यह भी कहते हैं कि, प्रथम ज्ञानदीप प्रकाशित होता है तदनंतर भक्तिमणि मिलती है। उस ज्ञानदीपको प्रकाशित करनेवाला धर्म है। जब जीव धर्मका सेवन करता है तब सत्त्वांश बढनेसे ज्ञानदीपकी कांति उज्ज्वल होती है। इतने लेखसे सिद्ध हुआ कि, जीवको धर्मका सेवन अवश्य करना चाहिये। धर्म क्या है ? इष्टरूपसे वेद प्रतिपाद्य जो है वह धर्म है। उसीका मीमांसकोंने सामान्य लक्षण किया है कि ‘ चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ’ वह धर्म अनेक प्रकारके हैं यथा—शैव, स्मार्त, वैष्णव इत्यादि। यद्यपि अन्यलोगोंके समान मैं स्वधर्म भिन्न धर्मोंको कषायित नेत्रसे नहीं देखता तथापि अनेक प्रमाणोंसे

वैष्णव धर्म धर्मशिरोमणि प्रतीत होता है । और ' स्वधर्मे मरणं श्रेयः' इत्यादि वाक्योंसेभी निजधर्मको श्रेष्ठही मानना चाहिये ।

उस वैष्णव धर्मके ४ भेद हैं । १ श्रीसंप्रदाय, २ ब्रह्मसंप्रदाय, ३ रुद्रसंप्रदाय, ४ सनकादिकसंप्रदाय । शास्त्रमें कहाभी है कि 'श्रीब्रह्मरुद्रसनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः' । ये चारों ही संप्रदाय सब प्रकारसे समान पूज्यही हैं अर्थात् इनमेंसे किसी भी संप्रदायोंमें न्यूनाधिक नहीं कहसकते इन चारोंही संप्रदायोंमें श्रीरामानुजस्वामीः श्रीमध्वस्वामी, श्रीविष्णुस्वामी, श्रीनिंबार्कस्वामी इत्यादि आचार्य और भक्त अच्छे अच्छे हुए हैं । पाठकगण ! यद्यपि धर्म, वेद शास्त्रोंसे जाना जाता है, तथापि तद्धर्मावलंबी पूर्वज महानुभावोंके पवित्र चरित्रसे वेद शास्त्रकी अपेक्षाभी विशेष जानाजाता है इससे मैं यहां श्रीसंप्रदायके पूर्वाचार्यों (आल्वारों) का चरित्र लिखना चाहताहूं ॥

श्रीसंप्रदायमें प्राक्तन महानुभावोंके दो भेद हैं, प्रथम आल्वार, द्वितीय आचार्य । आल्वार उनको कहते हैं जो महानुभाव वादविवादको छोडकर केवल भगवद्भक्तिपरायण थे । आचार्य उन्हें कहते हैं जो संप्रदायकी उन्नतिके लिये वादविवाद करते थे और भगवद्भक्तिकाभी निर्वाह करते थे ।

और श्रीरामानुजस्वामीका तो आल्वार और आचार्य दोनोंमें अभिनिवेश है । प्रत्युत श्रीभाष्यादि अनेक सुन्दर ग्रंथ रचनेसे और संप्रदायको विशेष उन्नति देनेसे इस संप्रदायमें पूर्वाल्वारोंसे भी इनका मान विशेष है ।

इस संप्रदायमें द्वादश आल्वार गिने जाते हैं । आल्वार पदवी मधुरकवितकही है । यह मत जानना कि, श्रीरामानुजस्वामीसे पूर्व जो हुए वे सब आल्वारही हुए किन्तु श्रीरामानुजस्वामीसे पूर्वभी

श्रीयामुनाचार्यादिक आचार्य हैं। और बोधायनादि मुनीश्वरभी इसी संप्रदायके आचार्य गिनेजाते हैं। इन महानुभावोंका अवतार कारण भी यथामति संग्रहसे लिखताहूं—

करिभूधरजातपारिजातः करिराजार्तिनिदाघकालमेघः।
कमलाकुचगुच्छचञ्चरीकः कमलेशो मम कामितं विधत्ताम्॥

" वैकुण्ठे तु परे लोके श्रिया सार्धं जगत्पतिः। आस्ते विष्णुरचिन्त्यात्मा भक्तैर्भागवतैः सह " इस प्रमाणसे प्रतीत होता है कि, श्रीवैकुंठलोकके भीतर उभयविभूतिको प्रकाशकरनेवाले दिव्यसिंहासनपर श्री-भू-नीलादेवीसमेत विराजमान ' श्रीमन्नारायण भगवान् ' अपने निरतिशयज्ञानानन्दस्वरूपद्वारा भगवच्चरणकमलोंका सेवन करके आनन्दित हुए शेषभगवान् और गरुड विष्वक्सेन आदि अनन्त नित्य मुक्तोंको देख, विचार करने लगे कि, हमारा अंशभूत (संसारी) जीवभी हमारे अनुभवको करके हमारी कैंकर्यसंपत्तिको भोगनेकी शक्ति रखते हुएभी उससे वंचित होकर पक्षरहित पक्षीके सदृश पतित होरहा है। इस प्रलयसीमामें संसरणकरनेवाले इन जीवोंके उद्धार करनेके लिये हम इन्हें शरीर प्रदान करें, ऐसा विचारकरके—" प्रलयसीमनि संसरतः करणकलेवरैर्घटयितुं दयमानमनाः"—अत्यंत दयावान् होकर " विचित्रा देहसंपत्तिरीश्वराय निवेदितुम्। पूर्वमेव कृता ब्रह्मन् हस्तपादादिसंयुता॥" इति हाथ पाँव सहित इस विचत्रदेहको रच इन संसारी जीवोंको प्रदान किया कि, इससे ये भगवच्चरणकमलोंकी सेवा करके अपना उद्धार करसकेंगे।

ये संसारी जीवभी भगवत्कृपासे ऐसे शरीरको पाकर इस दुर्दशाको प्राप्त हुए कि, जैसे—कोई " समिधा लानेवास्ते दीहुई छुरी ले समिधाके बदले गौके पूँछ काटकर महापाप कमाता हुआ नरकका अधि-

कारी होताहै तथा नदीपार होनेके लिये हितपुरुषसे दीहुई नौकाको ले, चलानेकी अज्ञताके कारण धाराके बलसे समुद्रमें जा डूबता है, इसी तरह यह जीव भी 'ईश्वरोहमहंभोगी' इत्यादि अज्ञान और "अहं वै भगवान् विष्णुरहं नारायणः प्रभुः" इत्यादि अहंभावमें पडकर भगवच्चरणसेवाको छोड स्रक्चन्दनादि विषय भोगमें आसक्त हो वर्णाश्रमके धर्म एवम् आचारको भी छोड अकृत्योंको करने लगा ॥

पश्चात् परमात्मा और भी कृपावान् होकर इन जीवोंको कृत्या-कृत्य विवेकबोधके वास्ते "शासनाच्छास्त्रम्" "हर्तुं तमः सदसती च विवेक्तुमीशो ज्ञानं प्रदीपमिव कारुणिको ददाति" इति संज्ञान विज्ञान-प्रज्ञान संपादनोपयुक्त शास्त्रोंका भी प्रदान किया। फिर भी उन शास्त्रोंके तात्पर्यको यथावत् न जानकर संज्ञानादिके बदले अज्ञान अन्यथाज्ञान विपरीत ज्ञानोंका संपादनकरनेमें आसक्त होनेलगे। फिर भी परमात्माने विचार किया कि, जैसे भूतावेशसे मोहित पुरुष मंत्र बलसे ठीक होता है वैसेही अहंकारग्रस्त ये जीव भी 'मंत्र बलसेही ठीक होंगे, इस विचारसे आपही स्वयं नर नारायण अवतार लेकर अष्टाक्षर ब्रह्मविद्याको प्रगट किया। तब भी तदुक्तानुष्ठानको न करके "योन्यथासन्तमात्मानमन्यथाप्रतिपद्यते। किं तेन न कृतं पापं चोरे-णात्मापहारिणा।" इस प्रमाणानुसार फिर भी समस्त पापोंके हेतुभूत स्वातन्त्र्यरूप आत्मापहारचोरी कर अनादिकर्मवासनादूषित चोर होकर परमात्मासे अत्यंत विमुख होगये।

अनन्तरभी भक्तवत्सल करुणामूर्ति सत्यसंकल्प परमात्मा इन स्वतंत्र चोरोंको दंडदेनेके लिये विचार किया कि, "जैसे राजालोग राजाज्ञाको उल्लंघनकर स्वेच्छाचारसे चुरानेवाले चोरोंको नाश कर-नेके वास्ते अपनी सेना सजकर आप स्वयं जायाकरते हैं" वैसे मुझे भी अपनी सेनासहित जानाही पडेगा। इस विचारसे राम कृष्ण आदि

अवतार ले पृथ्वीमें आय " मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः । यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः। संकरस्य च कर्तास्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः । " इति लोकमर्यादा आदिकोंको आप अनुष्ठानकर औरोंको भी अनुष्ठान कराकर संसारि जीवोंको अपने स्वाधीन करने लगे । इतना परिश्रमी होनेपर भी " आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनिजन्मनि । मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्" इत्युक्त प्रकारसे अधः पतितही होने लगे । इन आसुरी जीवोंकी अधोगतिको देख परदुःखासहिष्णुत्वादि अनंत कल्याण गुणयुक्त परमात्माने और भी एक उपाय रचने लगा कि, हमसे विजातीय आचरणवाले इन जीवोंको स्वाधीनकरनेके लिये जैसे मृगपकडनेवाला तत्सजातीय माया मृगको ले (लक्ष्य) मृगको पकडकर जालमें करलेता है वैसेही मैं भी हमारे परिजन शंख चक्रादि आयुध तथा अनंत गरुडादि नित्यमुक्तोंको ले, इनको पकड स्वाधीन करें, ऐसा विचारकर नित्यमुक्तोंको आज्ञा दी कि, आप लोग भूमीमें मनुष्यरूप होकर उच्चनीच तरतम भावको छोड सब जीवमात्रको इस वैकुंठमें ले आवो, मैं भी आपलोगोंके द्वारा हमारे कार्यको साधलूंगा ।

अनन्तर भगवदाज्ञाको पाते ही "कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः । कृतादिषु नरा राजन् कलाविच्छन्ति संभवम् । क्वचित्क्वचिन्महाभागा द्राविडेषु च भूरिशः। ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ कावेरी च महाभागा प्रतीची च महानदी । ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजाधिप ॥ प्रायो भक्ता भविष्यन्ति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥" इस प्रमाणानुसार वे नित्यसूरि लोग इस भूमिमें तत्र तत्र अपनी २ इच्छासे अवतार लिये हैं । येही आल्वारशब्दसे कहे जाते हैं॥

इन आल्वारोंके श्रीनाम ये हैं यथा--१, श्रीसरोयोगीस्वामी २, श्री-भूतयोगीस्वामी ३, श्रीमहद्योगीस्वामी ४, श्रीभक्तिसारस्वामी ५, श्री-शठकोपस्वामी ६, श्रीकुलशेखरस्वामी ७, श्रीपद्मिनीजी ८, श्रीयोगी-वाहनस्वामी ८, श्रीभक्तांघ्रिरेणु स्वामी १०, श्रीविष्णुचित्तस्वामी ११, श्रीपरकालस्वामी और १२ श्रीरामानुजस्वामी । श्रीगोदाजीकी कथा श्रीविष्णुचित्तस्वामीकी कथाके अंतर्गतही है ॥

मैंने इस ग्रंथमें भार्गवपुराणके उत्तरखंडानुसार कथा लिखी है उक्तपुराणके उत्तरखंडमें बहुत स्थानोंपर श्रीआल्वारोक्त भगवत्के स्तोत्र और भगवत्पादका विशेष वर्णन हैं वे सब मैंने ग्रंथ विस्तर भयसे छोडदिये हैं । कहीं २ अपनी ओरसेभी कल्पना की है और जहां मुझसे कुछ त्रुटि होगई हो वहां विज्ञजन क्षमा करें, यही नम्र निवेदन है॥

भवदीय पंचापदेशीय सुदर्शनदास ।

श्रीहरिः ।

श्रीआल्वारचरितामृत ।

भूतं सरश्च महदाह्वयभट्टनाथ-
श्रीभक्तिसारकुलशेखरयोगिवाहान् ॥
भक्तांघ्रिरेणुपरकालयतीन्द्रमिश्रान्
श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥ १ ॥

न्यग्रोधपत्रशयनस्य कृते कृतायाः
श्रीविष्णुचित्तकरगुम्फितमालिकायाः ॥
दृष्ट्वा धृतिं किमिति तस्य वचो निशम्य
गोदागिरो नहि नहीत्यखिलान्पुनन्तु ॥ २ ॥
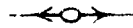
श्रीसरोयोगीस्वामीकी कथा ।

दक्षिणादिगंतर्गत द्रविड देशमें कांची नामकी एक पुरी है। जो दक्षिणके उत्तम तीर्थोंमें गिनी जाती है। उस पुरीके चारोंओर निर्मल अगाधजल परिपूर्ण विविध-कमलालंकृत परिखा रहती थी। जिस पुरीमें सब विध विभूतिसंयुत धर्मदामदृढबद्धहृदय धनाढ्य लोग निवास करते थे। जो पुरी श्रीनारायणके परम भक्त प्रेम रसामृतपानमें लुब्ध महानुभावोंसे अलंकृत थी। उस कांचीमें एक सरोवर था जो सदा शतपत्रसौरभाकृष्ट षट्पद-झंकारसे शब्दायमान रहता था उस सरोवरके रवि बिंब-

समान शोभायमान एक पवित्र पीत कमलमें द्वापरयुग ८,६२,९०१ में सिद्धार्थिवर्ष आश्विन शुक्ल अष्टमी श्रवण नक्षत्रमें श्रीनारायणके पांचजन्यका अवतार प्रकट हुआ। पाठकगण! यह कमल क्या जाने तो भगवत्के नाभिकमलका अवतार था, क्या जाने लक्ष्मीके निवास शतपत्रका अवतार था, क्या जाने वह भक्तिचूर्णकी डबिया थी, जिसमेंसे ऐसा अपूर्व भगवद्भक्त प्रकट हुआ॥

जिस समय ये महात्मा प्रकट हुए उसी समय देवताजनोंने दुन्दभियें बजाईं। गन्धर्व लोगोंने वीणा क्वणन किया। अप्सरायें नाचने लगीं। पुष्पवर्षा होने लगी। ये भी प्रकट होकर बालचन्द्रमाके सदृश क्षण क्षणमें बढने लगे। मानो भक्तिलता जो भीतर बढती जातीथी वही कायको भी बढाती जाती थी॥

मुनीश्वरके प्रकट होते ही भगवान् श्रीमन्नारायण भी सर्व कार्यको त्याग अपनी प्रियाके साथ शङ्खचक्रादिसे विभूषित हो पन्नगासन पर बैठ उसी सरोवरके तीरपर आपहुँचे। क्यों न हो, वैसे बेटा होयही न तो संतोष हो सकता है, होनेपर माता पिता पुत्र मुखावलोकनमें बिलम्ब करसकें यह कब हो सकता है। भगवान्ने आतेही उस शिशु (मुनीश्वर) को उठाकर हृदयसे लगाया, और शिरका चुम्बन किया. शिरके चुम्बन

व्याजसेही मानो समग्र वेदशास्त्र सिद्धांतोंका उपदेश कर दिया अथवा शिरके मार्ग हृदयरूपी कलशमें सिद्धांत भर दिये।

तदनन्तर भगवान्‌ने श्रीलक्ष्मीजीकी गोदमें दिये। उननेभी उसी स्नेहसे हृदय लगाय स्तन्यपान कराया। वह स्तन्य न था मानो भक्तिरस था अथवा योगामृत था। भगवान्‌ने उस बालकको सरमें प्रकट होनेसे "सरोयोगी" यह नाम दिया॥

मुनीश्वरभी सकल ज्ञानको प्राप्तहोकर भगवत्‌की स्तुति करने लगे। भगवत्‌ने प्रसन्न होकर न्यास योगका उपदेश किया। न्यासयोग नाम वैष्णवसंप्रदायानुसार प्रकृति प्रभृति तत्त्व निरूपणका है। तदनंतर भगवत्‌ने आज्ञा दी कि, तीर्थयात्रा करो और तहां तहां लोगोंको वैष्णवधर्मका उपदेश करो॥

यह आज्ञा दे भगवत् अपने पुरको पधारे। योगिराजभी भगवदाज्ञानुसार तीर्थयात्राको पधारे॥ १॥

श्रीभूतयोगीस्वामीकी कथा।

द्रविड़देशमें एक मल्लपुर[१] नामक नगर है जो अनेक प्रकारकी पण्यवीथिकाओंसे विराजमान, हरिमंदिरोंसे

---

१ महाबलिपुरम् ऐसा प्रसिद्धनाम है.

शोभायमान और ऊंचे गोपुरोंसे शोभायमान और स्थान स्थानपर भगवत्कथा तथा वेद पाठादिकसे शब्दायमान है ॥

उस मल्लपुरमें हंसकारंडवादिसे सेवित, विविध इन्दीवरोंसे सुशोभित, महाजनोंसे संसेव्यमान एक सरोवरमें श्रीमुकुंदके नयन स्वरूप एक परमपावन नीलोत्पलसे द्वापरयुग ८, ६२, ९०१ में सिद्धार्थि वर्ष आश्विन शुक्ल नवमी धनिष्ठा नक्षत्रके दिन भगवत्की गदाका अवतार प्रकट हुआ ॥

भगवान् भी श्रीवैकुंठ लोकसे परमप्रेयसी श्रीलक्ष्मीको साथ लेकर गरुड़पर विराजमान हो, अपने तेजसे तेजबिंबको भी तिरस्कृत करतेहुए उसी सरोवरपर आपहुँचे । आतेही उस सद्यः प्रकटित बालकको उठाय प्रियाके अंकमें देदिया। श्रीलक्ष्मीजीने भी परमस्नेहसे निर्भर हो कंठलगाय निजस्तनदुग्ध पान कराया । वह दुग्ध न था मानो बढ़ानेका अमृत रस था जो दुग्धपान करतेही बालक बढकर पुष्टांग होगया ॥

तदनंतर भगवत्ने भूतयोगी यह नाम कृपा करके न्यास योगका उपदेश किया । योगीश्वरने न्यासयोग श्रवण करके, भगवत्से संबंधज्ञानार्थ प्राथना की । उस परमकृपालु लोकेश्वर भगवत्ने उसी समय अपनी

परमपवित्र श्रीरामावतारकी लीलाके दृष्टांतसे संबंध ज्ञान कृपा किया। और आज्ञादी की, मेरे पवित्र क्षेत्रोंकी यात्रा करो। तहां तहां वैष्णवधर्मोपदेशसे जीवोंका उद्धार करो। यह आज्ञा देकर भगवान् अपने धामको पधारे, मुनीश्वरभी भगवदाज्ञा पाकर, भगवत्के उसी रूपका ध्यान करतेहुए, भगवद्विरहसे अश्रुधारा बहाते हुये भगवत्के श्रीकृष्ण श्रीहरे मुरारे इत्यादि नाम जपते हुए, तीर्थयात्राको पधारे ॥

शक्य था. यदि योगीश्वर दो चार दिनके पीछेभी यात्रा करते, किंतु भगवत् विरहकी व्याकुलताके कारण क्षण भरभी वहां न ठहर सके ॥

अथवा उस दिव्यरूपके खोजनेको उस रूपके पीछे चल दिये। अथवा तृषितनेत्रोंकी किंचित् तृषा बुझानेके लिये तीर्थोंमें भगवद्विग्रहोंको निहारते चले हैं। अथवा उस स्थानपर जो भगवत्का वियोग हुआ इससे उसे भगवद्वियोगकारिताके दोषसे तुरंत त्याग दिया ॥ २ ॥

श्रीमहद्योगीस्वामीकी कथा।

द्रविड़देशमें एक मयूर[2] नगर है। जो अत्यंत सुंदर

१ योगेश्वरकी जीव और ईश्वर का परस्पर क्या संबंध है यह जाननेकी प्रार्थनाथी। भगवत्ने श्रीजानकीजीमें जीवत्वारोप करके समझाया कि, यथा जानकी मुझे अपना स्वामी जानकर मेरा ध्यान करती थी उसी तरह तुमभी मेरा ध्यान करो। अर्थात् जीव स्व है और भगवत् स्वामी है जीव और ईश्वरका परस्पर स्वस्वामिभाव संबंध है। २ मयिलापूर जो मद्रासमें है ॥

परिकोटासे शोभायमान, अनेक प्रकारकी धर्मशाला प्रभृतिसे मंडित, नगरनिवासी धनवानोंके समूहसे अलंकृत, ऊंचे गोपुरोंसे विभूषित, अपनी शोभासे मनका हरण कररहाहै; जिसके मार्ग अनेक गज अश्वरथादिवाहनोंसे सदा भरे रहतेहैं। जिसमें भगवत्के परमभक्त निवास कर रहेहैं और जहां बात बातपर भगवन्नाम श्रवणगोचर होताहै ॥

उस पवित्र मयूर नगरमें सुगन्धित शीत विमल भक्तिसुधारसके समान जलसे परिपूर्ण, त्रिषवणस्नायी महर्षिलोगोंसे सेव्यमान, बटुक जनोंके कमण्डलुओंसे शोभायमान, अप्सरागणोंसे अधिष्टित लतागृहोंसे परिवृत एक लताह्रत् नामका सरोवर है ॥

उस लताह्रत् सरोवरमें एक कमलसे आश्विनके शतभिषक् नक्षत्रके दिन भगवान् विष्णुके खड्गका अवतार प्रकट हुआ। भगवत् भी उसी समय अपनी प्राण प्रेयसी श्रीके साथ उस सरोवरपर प्रकट हुए । भगवत्के कृपापरिपूर्ण दृष्टिसे अवलोकन करतेही बालक यौवनको प्राप्त होगया ॥

भगवत्ने आलिंगन करके महद्योगी नाम कृपा किया। और न्यासयोग[1]का उपदेश करके तत्त्वत्रय[2]का

---

१ न्यासयोग–शरणागति विवरण। । २ तत्त्वत्रय अर्थात् तत्त्व तीन हैं । १ ईश्वर, २ चित्, ३ अचित्। ईश्वरतो भगवान् श्रीहरि । चित् जीवको कहते हैं । अचित् प्रकृति । प्रकृतिका यों प्रस्तार है कि–प्रकृतिसे महत्तत्त्व,–

उपदेश किया । तदनन्तर भगवान्ने आज्ञा दी कि, तुम- भी मेरे पुण्यधामोंकी यात्रा करो, और जहां तहां वैष्णव धर्मोपदेशसे जनोंको पवित्र करो । यह आज्ञा दे भग- वान् अपने श्रीधामको पधारे । योगीश्वरभी भगवदाज्ञासे तीर्थयात्राको पधारे ॥ ३ ॥

तीनों योगीश्वरोंकी मिश्रित कथा ।

तीनों योगिराज भगवदाज्ञासे तीर्थ यात्राको पधारे । निरन्तर भगवन्नामका उच्चारण करते और भगवल्ली- लाके अनुभवसे तन्मय रहते थे। इनको कभी भी क्षुधा, व पिपासा बाधित न करती थी । कभी भी मार्गश्रम प्रतीत नहीं होता था । क्यों न हो लौकिक योगीश्वरोंके भी शिष्योंको क्षुत्पिपासादि बाधित नहीं करतीं, ये तो उस अलौकिक योगेश्वरेश्वरके शिष्य हैं फिर इनकी क्या बात ? दिनभर भ्रमण करके रात्रिमें कहीं वनमें वृक्षा- दिके नीचे निवास करते थे । शीतोष्ण सुख दुःख माना- पमान इत्यादि द्वन्द्वोंका ये समान सहन करते थे । कभी भी लोक वार्तासे न सुखी होते थे न दुःखी होते थे । शरीरादि अचित् पदार्थोंमें मोहकी गन्धभी न थी । सदा भगवच्चरण ध्यानमें रत थे । मनन किये कराये पदार्थको

—महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे एकादश इंद्रियें और पंचतन्मात्रायें, पंचतन्मा- त्राओंसे पंचभूत यह अचित् तत्त्व २४ हुए । जीव और ईश्वर मिल कर २६ तत्त्व हुए । इसीका नाम तत्त्वत्रय है । विशेष शास्त्रोंसे जानना चाहिये ।

ये उस श्रुतिप्रतिपाद्य पुरुषोत्तमके मुखसे श्रवण कर-चुके थे इससे निदिध्यासन मात्र जो शेष कर्तव्य था वह उसी पुरुषोत्तमके चरण पंकजका निरन्तर करते थे। भोगाकृष्टमनजनोंसे सदा दूर रहते थे। भगवद्भक्तोंको सदा चाहकर प्रेमसे मिलते थे॥ तीनों योगीश्वर भिन्न भिन्न रहते थे, यदि कभी दैवात् समागम होता तो परस्पर साष्टाङ्ग करके परिरम्भण कर परमाह्लादको पाते ॥

जितना काल इकट्ठे रहते उतना काल केवल भगवत्कथा कीर्तनादिके सुखका आस्वाद लेते थे अर्थात् परस्पर समागममें भी भक्तिके उद्रेकसे शरीर कुशलादि प्रश्नकी ओर इनका मन नहीं जाता था। वियोगके समय अत्यंत दुःखित होकर अश्रुधारा बहा देते थे ॥

एक बेर तीनों योगीश्वर दैवात् वामन क्षेत्रमें पहुँचे। यद्यपि भगवान् इनके करुणासागरकी तरंगोंसे अविज्ञ न थे तथापि परीक्षाके लिये एक लीला रची कि, इनके वामन क्षेत्र पहुँचतेही घोर वर्षा होने लगी, चारों ओर चपला चमकती थी, मेघ गर्ज गर्जकर अत्यंतविशेष और स्थूल जल धाराओंको वर्षते थे। इतनेमें प्रथम जो श्रीसरोयोगी आये थे वे वर्षासे आकुल होकर मृकण्डु महर्षिके गृहकी देहलीपर खडे होगये । इतनेमें वहांही श्रीभूतयोगी पहुँचे, किंतु श्रीभूतयोगीने देहलीको अल्प-जानकर देहलीपर पग न दिया। प्रथमयोगीश्वरसे उनका

सहन सह्य न होसका इससे कहने लगे कि, वहांपर एक लोटसकता और दो रहसकते इसलिये आप भी आइये ऐसा बलात् उनको देहलीपर बुलालिया। ये दोनों महानुभाव भगवत्पदपद्मके मकरंदरसास्वादासक्त उस छोटीसी देहलीपर यथाकथंचित् खडे हुये थे कि, इतनेमें श्रीमद्योगी भी वहां ही आपहुँचे। श्रीमद्योगीने देहलीको अत्यंत अल्पजान और मुनिद्वंद्वसे निरुद्ध देख लौटनेके पग लौटायाही था कि, दोनों मुनीश्वर जाकर यहां तीन खडे रहसकते हैं इससे अपने तीनों यहांही निर्वाहकरें ऐसा कह लिपट गये और हठात् उनकोभी उसी देहलीपर ले आये॥

स्थानके संकोचसे तीनों परस्पर यह चाहे कि, मैं

---

१ पाठक महाशय! यहांपर यह शंका उठसकती है कि वहांपर बहुतसे घर होंगे तीनों मुनीश्वर पृथक् पृथक् देहलियोंपर विश्राम करते इतना कष्ट क्यों उठाया? इसका यह समाधान है कि, एक तो मुनीश्वरसमान भक्तिप्रयुक्त परस्पर प्रेमसे एक नगरमें रहकर देहल्यंतरका व्यवधान नहीं सहसकतेथे। और जैसे इस समय भारतवर्ष उपभोगकोही परम पुरुषार्थ मानरहा है ऐसे उससमय नहीं मानताथा क्योंकि यह बहुतप्राचीन कालकी वार्ता है उस समय कलिका आरंभभी न हुआथा किंतु द्वापरही वर्तमानथा। उससमय पक्के घर प्रायः धनवानोंकेही होतेथे। सामान्यलोगोंमें तो किसीकाही घर पक्का होताथा, प्रायः लोग इस असार संसारको सराय समझ कर झोपडियोंमेंही यथाकथंचित् सामग्रीसे आयु व्यतीत करदेतेथे। धनवानोंके द्वारपर तो पहरेदार रहतेथे वे मुनीश्वरोंको स्वरक्षित द्वारपर क्यों विश्राम लेने देते इससेभी मुनीश्वर धनवानोंके बडे बडे द्वारपर नहींगये। और धनवानोंके घर द्वार धन मददोषके दुर्गुणोंसे दूषित और दुर्गंधित होनेसेभी मुनीश्वर किसी-

भागूं तो कुछ बात नहीं परंतु इन दोनोंको दुःख न हो। नितान्त जो दो मनुष्योंकेभी खडे होने योग्य देहली न थी उसपर तीनों मुनीश्वरोंने निर्वाह किया । क्यों न हो भगवद्भक्तोंका परस्पर प्रेम जो होताहै वह अलौकिक होताहै, आज कल्हके दगाबाज खाऊप्रेम जैसा उनका प्रेम नहीं होता ॥

इतनेमें तो वह कौतुकी जिसने यमुनाके बीच नावका गट्टा खोलदियाथा हँसता हुआ अदृश्यहोकर अणुरूपसे देहलीपर पहुँचके इतना फूलने लगा मानो चुरा चुराकर जो मक्खन खायाथा उसकी मोटाई यहांहीके लिये सम्हार रक्खीथी। योगीश्वर चारों ओर देखने लगे संकोचका कारण कुछ न विदितहो और इतना संकोच होता चला-

---

—धनवानके चौडे द्वारपर नहीं पधारे । सामान्य पुरुषोंमें पक्के घरही नही होतेथे यदि किसीका घर पक्का हुआभी तो छोटासा होताथा इससे उस संकुचित अल्पसे द्वारपर निर्वाह करना पडा । यद्यपि यह जाना जाता है कि, यह घरभी भक्तिरंगसे रँगा न था क्योंकि यदि घर भक्तिरंगसे रँगा होता तो मुनीश्वर द्वारपरही क्यों निर्वाह करते भीतरही चले जाते । भीतरजानेसे एक तो विश्रामकोभी विस्तार मिलता, द्वितीय गृहपति भगवद्भक्तसे समागमभी होता । इस तरह भीतर न जानेसे जाना जाता है कि, यहभी घर भक्तिरंगमें रंगा न था । परंतु धनमददोष प्रयुक्त दुर्गुणोंसे दूषितभी न था । धनाभावसे । तबतो 'अपदोषतैव विगुणस्य गुणः' इस न्यायसे उस श्वेतवस्त्र समान गुणदोषशून्य घरके द्वारपर मुनीश्वरोंका विश्राम करना उचितही था । अथवा मुनीश्वरोंने सोचा कि, ऐसा गाढ आश्लेषके लिये फिर क्या जाने अवसर मिले व न भी मिले यह सोच उस संकुचित देहलीपरही विश्राम लिया ॥

जाय कि, सिंकजेमें आगये, नितांत देहलीसे उतरना तो एक ओर रहा हिलनाभी असाध्य होगया ॥

जब कुछभी विदित न होय तब तो अकुलाकर तीनों मुनीश्वरोंने खडे खडे ही समाधी लगाई, तब जानपडा की, यह तो वही कौतुकी राजहै। यह जान श्रीसरोयोगी स्वामीने तो उसी समय भूमिको थाली कल्पनाकर समुद्रजलको घृत बनाकर रविको दीप बनाकर भगवत्का मानसिक नीराजन किया ॥

श्रीभूतयोगीने प्रेमको थाली बनाकर उसमें मनरूपघृत डालकर ध्यानरूपी बत्ती रखके ज्ञानदीपसे प्रज्वलित करके भगवत्का मानसिक नीराजन किया। श्रीमहद्योगी भी नीराजन विशेष किया चाहते ही थे कि, झट भगवत् प्रकट होगया। पाठकवर! उचितथा कि, तृतीय नीराजनको भी लेकर भगवत् प्रकट होते परंतु उस करुणासागर गोविंदका यह प्रथम ही धैर्य्य है जो द्वितीय नीराजनसे प्रथमही प्रकट नहीं हुए। क्योंकि मुनीश्वर परीक्षोत्तीर्ण होचुके थे और वह भगवत् ऐसा भक्तोंसे वशीकृत है कि, श्रीगजेंद्रकी पुकारपर भगवत् जिस त्वरासे धायेथे वह किसको ज्ञात नहीं। भगवद्दर्शन पाकर श्रीमहद्योगीने भगवद्रूपका वर्णन किया, मानो नीराजनका करज जो शिरपर चढगयाथा उसे वर्णन

व्याजसे चुकता किया । तीनों मुनीश्वर उस आनंदसे फूले अंगमें न समातेथे । तदनंतर भगवच्चरणचुंबन करके तीनोंने मिलकर भगवत्प्रशंसा करने लगे। और तीनोंने तीन प्रबन्ध रचकर भगवत्को भेंट किया ॥

एकबेर भ्रमण करते२ तीनों मुनीश्वर पुनः वामनक्षेत्रमें पधारे।आकर भगवत्को साष्टांग करके भगवत्रूपमाधुरीपानार्थ वहांही वास करने लगे और जनोंको तत्त्वत्रयका उपदेश करतेरहे । इसी तरह कुछ काल बीतनेपर तीनोंके मनमें समाधि लगानेकी आयी इससे तीनोंही भिन्न भिन्न गुफामें आसनपर पूर्वाभिमुख होकर विराजे॥ अष्टाक्षरमंत्रसे पूरक कुंभक रेचक करके पुनः कुंभकसे स्थित होगये। और ज्ञानसूर्यसे हृदयपद्मको प्रफुल्लितकर उसपर भगवच्चरण नख केशरका ध्यान जमाया । मुनीश्वरोंने तो भगवत्के चरणनखका ही ध्यान लगायाथा, भगवत्ने तो भूखे बाबाजीके सदृश सकल वपुसे प्रियासहित जाकर वहांही डेरा जमादिया ॥

इतनेमें ब्रह्माजी भगवत्स्थानमें गये तो देखते क्या हैं कि, न वहां भगवान् हैं न लक्ष्मीजी, तबतो जहां भग-

---

१ ये तीनों प्रबंध द्राविड भाषामें हैं । अबभी द्राविड़ाक्षरोंमें मुद्रित मिलते हैं । इनका अर्थ अत्यंत गहन और भक्तिमय है । द्राविड लोगभी अब इन्हें समझ नहीं सकते किंतु कोई कोई महात्मा इनके अर्थको कुछ जानते हैं और पढातेभी हैं ।

वान् थे वहां ही ब्रह्माजी आये। आकर भगवानको साष्टांग निवेदनकर करजोर प्रार्थना की आप निजधामको छोड़ कर यहां कैसे विराजमान हैं। भगवानने उत्तर दिया कि, मेरे प्राणप्रिय भक्तोंने यहां योगासन लगायाहै इससे मैंभी यहांही वास करताहूं। क्यों नहों जहां ही वत्स वहां ही गैया। ब्रह्माजीने पुनः प्रार्थना की कि, हे भगवन्! आपके ये कैसे योगसिद्ध भक्त हैं जिनने मुझे भी न देखा? भगवत्ने उत्तर दिया कि, जो ब्रह्मानंदमें मग्नहैं और जिनकी दृष्टि प्रपंचका उल्लंघन कर गई हैं उन्हें किसीको देखनेसे क्या अपेक्षा ?

ब्रह्माजीने पुनः भगवान्से प्रार्थना की कि, यदि प्रभु आज्ञादे तो मैं इनकी परिक्षा करूं मुनीश्वर निजभावमें पूर्ण दृढथे। और भगवत्की भी उनपर निरतिशय निजकृपा थी इससे तुरंत भगवानने आज्ञादी कि यथेच्छ परीक्षा करो॥

ब्रह्माजीने भगवदाज्ञा पाकर कामदेवको बुलाकर कहा कि, अप्सरागणोंको साथ लेकर इन योगियोंके योगमें विघ्न डालो। चतुर्मुखाज्ञासे कामदेवने योगीश्वरोंके समीप जा धूममचाई और प्रतिभटोंको दृढतर जना सब प्रकारसे बलव्यय किया किंतु मुनीश्वरोंका तो नेत्र भी न खुला। पाठकगण! यह बड़ा कुशल हुआ, कामके

लिये जो मुनीश्वरोंका नेत्र न खुला, क्योंकि श्रीमहादेव-जीके नेत्र खुलनेसे कामको अनंग बनना पडा, यदि इन मुनीश्वरोंका नेत्र खुल जाता तो कामको अशक्त (असामर्थ्य) भी बनना पडजाता । तब तो हारकर ब्रह्म-लोकमें पहुँच कामने ब्रह्माजीको सब वृत्तांत सुनादिया ॥

तदनंतर ब्रह्माजीने घोर वर्षा होनेकी आज्ञादी और वर्षामें अनेक प्रकारके स्थूल हिंसक जीव वर्षाये, उन जीवोंने क्षुधार्त होकर मुनीश्वरोंको निगल भी लिया । जैसा पारा पियाहुआ मूषकको पच नहीं सकता प्रत्युत उसीके प्राणोंका प्यासा बनजाताहै, इसी तरह मुनीश्वरोंको निग-लतेही उन जीवोंके उदरमें आग लगगई प्राण रुद्ध होगये; कभी उस परमेश्वरका पदार्थ और किसीको पचसकताहै? नितांत वे जीव गतप्राण होगये परंतु मुनीश्वर स्वसमा-धिसे चलायमान न हुए । तब तो ब्रह्माजी चकित और लज्जित होय आकर प्रदक्षिणा और दंडवत्प्रणाम करके नयन नीर बहाते हुए मुनीश्वरोंकी स्तुति करने लगे ॥

पाठक महाशय ! सुवर्णको चाहे कितनाभी गलाओ उसमें क्षति नहीं आसकती प्रत्युत जितना गलाओगे उतनाही उजला होता जायगा ॥

तदनंतर ब्रह्माजीने भगवत्समीप आकर साष्टांग करके विनय किया कि, यह योग मुझेभी प्रसादहोना

चाहिये, भगवत्ने ब्रह्माजीकोभी शेषशेषिभावसे परिपूर्ण वह योग कृपाकिया। योगप्रसाद लेकर ब्रह्माजी अपने लोकको पधारे। यद्यपि मुनीश्वरोंकी परीक्षा करनेसे साप-राध ब्रह्माजी योगप्रसादके योग्य नथे तथापि पुत्र यद्यपि सापराध होकर भी मातापिताके समीप जाय तो कुछ न कुछ लेकर ही लौटताहै॥

कुछ कालानंतर उस समाधिको समाप्तकर मुनीश्वर भगवत्के समीप गये और साष्टांगकरके भगवत्को प्रशंसित किया। भगवत्ने प्रसन्न होकर नैमिषारण्य जानेकी आज्ञादी। मुनिश्वरोंने भगवदाज्ञा पातेही नैमि-षारण्यको प्रयाण किया। वहां जाकर भगवान् श्रीहरिका दर्शनामृत पान किया। तत्रत्य महात्माओंको न्यासयो-गोपदेशामृत पानकराकर हरिक्षेत्र (शालीग्रामतीर्थ) को पयान किया। वहां श्रीशालीग्रामस्वरूप हरिको दण्डवत् करके श्री अयोध्यापुरीको पधारे वहां भगवान् श्रीरामचंद्र महाराजका चरण वंदनकर दर्शनामृत पान-करके श्रीरघुवंशावतंसकी स्तुति की, श्रीअयोध्या निवासी महात्माओंको शेषशेषिभावका उपदेश किया और कुछ काल वहांही सरयूतटपर निवास किया॥

वहांके किसी सद्ब्राह्मण विशेषने मुनीश्वरोंको अपनी विपत्तिका वृतांत्त निवेदन किया, करुणासागर मुनीश्व-

रोंने संपत्ति प्राप्तिका वरदिया । वरप्रदान पाते ही उसे अनेकप्रकारकी संपत्ति मिलगई ॥

तदनंतर मथुरा जाकर मुनीश्वरोंने यादवकुलतिलक भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन किये । मथुरासे मायापुरीमें आकर मधुसूदन भगवान्का दर्शन किये वहांसे काशी जाकर श्रीशेषशायी भगवान्का अवलोकन किया अवंतीमें जाकर भगवान् श्रीअवनीनाथको निहारा । द्वारकामें जाकर भगवान् श्रीयादवेन्द्रको साष्टांग की । तदनंतर ब्रजमें आकर श्रीगोपीजनसखा भगवान्का रूपामृत पानकिया । श्रीवृंदावनमें आकर श्रीनंदसूनुके दर्शन पाये ॥ कालियदहपर श्रीगोविंदका चरणचुंबन किया गोवर्द्धनपर जाकर भगवान् [२]श्रीगोपवेशका पूजन किया वहांसे गोमंतपर्वतपर जाकर श्रीशौरि भगवान्का अर्चन किया तदनंतर हरिद्वार जाकर श्रीजगत्पतिका आराधन किया । प्रयाग जाकर श्रीमाधवका वंदन किया और कुछ दिन वहांही निवास किया फिर गयामें जाकर भगवान् श्रीगदाधरका दर्शन किया ।

---

१ जो श्रीगोविंददेवजी इस समय जयपुरको पवित्र कर रहे हैं संभव है कि, यही विग्रह उन दिनों कालियदहपरहो । क्योंकि मुनीश्वरोंके इस समयतक कदाचित् श्रीकृष्णावतार होचुकाहो, क्योंकि सुना है कि, यह विग्रह वज्रनामका बनाया है । २ यहभी सम्भव है कि, जो आज कल श्रीनाथजी उदयपुर राज्यमें हैं इन्हींका नाम उस समय गोपवेश होय ।

गंगासागरमें भगवान् विष्णुका आराधन किया और कुछ काल वहां वास करके लोगोंको भगवद्भक्तिका उपदेश दिया वहांसे चित्रकूटमें आकर श्रीराघवजीके दर्शन पाये, नंदग्राममें भगवान् श्रीराक्षसघ्नको साष्टांगकी ॥ प्रभास-तीर्थमें विष्णु भगवान्को निहारा । कूर्मक्षेत्रमें भगवान् श्रीकूर्मका अवलोकन किया वहांसे नीलपर्वतको पधारे दूरहीसे पर्वतको दंडवत् कर पर्वतपर चढे वहां इंद्रनी-लमणि श्यामसुंदर स्वरूप बलभद्र सुभद्रा सहित विरा-जमान श्रीजनार्दन भगवान्के दर्शन किये । कुछ काल वहां निवास किया और लोगोंको अष्टाक्षरमंत्रका उपदेश किया ॥

वहांसे सिंहाचलमें जाकर महासिंह भगवान्का पूजन किया । वहांसे श्वेताद्रिमें जाकर श्रीनृसिंहका अर्चन किया । और कुछ दिन वहां निवास कर लोगोंको भग-वदनुरक्तिका उपदेश किया ॥

तदनंतर गोष्ठीवनमें श्रीसाक्षिनारायणका अवलोकन किया। वहांसे सांध्रदेश अथवा सांध्रनगरमें श्रीकाकुडाधी-शभगवान्का अवलोकन किया । तदनंतर धर्मपुरीमें यो-गानंद श्रीनृसिंहका पादवंदन किया । वहांसे विष्णुपथमें श्रीलक्ष्मीनारायण और श्रीकृष्णको निहारा। अहोबलसे जाकर श्रीपांडुरंगेश और श्रीविट्ठलजीके दर्शन किये। तदनंतर श्रीवेङ्कटाद्रिके समीप गये यह पर्वत भगवत् स्व-

रूपहै और इस पर्वतमें १०८ तीर्थ हैं इसकारण पादस्पर्श दोषभयसे मुनीश्वर भगवद्दर्शनार्थ पर्वतपर नहीं चढे। किंतु नीचे ही बैठकर योगमर्यादासे भगवान् श्रीनिवासका ध्यान लगाया भगवत् प्रसन्न होकर प्रकट हुए । मुनीश्वरोंने साष्टांगकर स्तुतिकी । भगवत्ने वर दिया कि, जो लोग तुम्हारे उपदेशानुसार चलेंगे उन्हें मैं मुक्तिपद देऊंगा। यह वर देकर भगवत् निज मंदिरमें चलेगये । यहांपर शंका है कि, भगवतको उचितथा कि, ऐसा वर देते जिसका फल मुनीश्वरोंको प्राप्त होता. स्तुति तो की मुनीश्वरोंने उसका मुक्तिपद प्राप्तिरूप फल पहुँचा शिष्यगणोंको। परंतु भगवत्भी क्या करते एकतो मुनीश्वर महानिष्काम द्वितीय नित्यमुक्त फिर मुनीश्वरोंको क्या वर देते विवश उनके द्वारा उनके सच्छिष्योंकोही वरदेनापडा । उचितभी है क्योंकि, जब पुत्र समर्थ होजाताहै तब पुत्रके पुत्रका लालन पोषण होने लगताहै । मुनीश्वरोंने भी कुछ दिन वहां वास करके वहांके लोगोंको भक्तिमार्ग दिखाया। वहां ही आकर हरिदास नामक एक ब्राह्मणने संबंधज्ञानार्थ प्रार्थना की, योगीश्वरोंने भलीभांति संबंधज्ञान करादिया कहा कि जीवात्मा शरीरहै शरीरी भगवान् विष्णुहैं इससे शरीरी भगवान् विष्णु जो आत्माकाभी आत्माहै उसका भजन करना चाहिये । और भागवतार्चन करना

१ 'यस्यात्मा शरीरम्' ऐसा वेदमेंभी सुनाजाता है ।

चाहिये। हरिदासने निवेदन किया कि, मैं परमकीर मनुष्य किसतरह भागवतार्चन करूं? यह सुन मुनीश्वरोंने एक अक्षयपात्र दिया जिससे यथेप्सित सब पदार्थ मिलताथा। उस पात्रकी रक्षानिमित्त सुदर्शन चक्रको आज्ञादेदी। और ब्राह्मण हरिदासके वंशवृद्धिके निमित्त एक पुत्रकाभी वर कृपाकिया। हरिदासजी मुनीश्वरोंको अभिवंदन कर बिदाहुए। श्रीरंगादिक्षेत्रोंमें जाकर भगवत् और भागवतार्चन करने लगे। प्रथम भागवतोंको अन्न देतेथे पीछे औरभी मनुष्योंको अन्न देतेथे। ये हरिदास महात्मा भगवत्के अनेक उत्सव कराते रहे। इनने भगवत्के मंदिरभी अनेक बनवाये। इसीतरह अनेक प्रकारके अन्न वस्त्र भूषणादिक वैष्णव जनोंको देतेरहे। वैष्णवजन शेष अन्न वस्त्रादि अन्यजनोंकोभी प्रदान करतेरहे। कुछकालमें संबंधज्ञान भावनासे भगवत्के परमधामको पधारे। यद्यपि गुरु योगीश्वरोंकी आज्ञा भागवतार्चनकेही लियेथी तथापि हरिदासजीने भगवदर्चनभी किया और तो क्या सामान्य जनोंका भी पालनपोषण करते रहे क्यों न हो लायक शिष्य गुरुकी आज्ञाको यथारूपसे विशेषही निवाहके दिखाया करते हैं॥

योगीश्वरभी श्रीनिवास भगवान्को साष्टांग करके यादवाद्रिपर पहुंचे। वहां श्रीनारायणको साष्टांग करके सप्त ऋषियोंके वरदाता श्रीअघापह नाम भगवान्के दर्शन किये। वहांसे कांचीमें पधारे, वहां वारणाचलको

प्रणाम करके उसपर चढकर पुण्यकोटिमें विराजमान श्रीवरदनारायणके दर्शन किये । और श्रीवरददर्शनामृत तृषाके वश होकर कुछ दिन वहांही निवास किया । विष्णुधर्म नामक कांचीनरेश भी मुनीश्वरोंके दर्शनको जाने लगा । शत्रुजनोंने इस अवसरको भला जान कांचीको आ घेरा, राजाने यह सब सुनकर युद्धका आरंभ किया, शत्रुसेना विशेष थी, इससे सेनाके भाग जानेसे स्वयं एकाकी युद्धको निकला कुछकाल युद्ध भी किया, नितांत राजाभी पराजित होकर मुनीश्वरोंकी शरणमें गया । मुनीश्वरोंने अभय दिया । राजा अपने नगरका पालन करने लगा ॥

मुनीश्वरभी वहांसे ईशा नगरमें गये, वहां भगवान् हरिके दर्शन करके त्रिविक्रम भगवान्के दर्शनको गये । वहांसे कामाशिनीमें पधार श्रीनृसिंहके दर्शन किये । द्वितीय स्थानमें अष्टभुज भगवान्के दर्शन किये तदनं-

१ ग्रंथकारने युद्धके विषय विशेष कुछ नहीं लिखा कि, राजाके हाथ पुनः कांची किस प्रकार आई यही लिखा है कि, मुनीश्वरोंने अभय दिया । यहां-पर यहभी शंका है कि, मुनीश्वरोंने वामन क्षेत्रमें देहली संकोचका अनुभवतो किया किंतु किसी धनवान्के विपुल द्वारपर विश्राम नहीं किया फिर यहां राजाको क्योंकरमिले? इसका यह समाधान है कि, मुनीश्वर स्वयं राजाके घर नहीं गये और अपने समीप महानीचभी आता हो तो उसकोभी महात्मा लोग रोकते नहीं और यहभी संभव है कि, कदाचित् राजाभी भक्त होय। और भगवद्भक्तिके वा मुनीश्वर भक्तिके कारण राजाका पराजय होना यद्यपि अनु-चित था तथापि राजाके हृदय गुल्मपर कोई न कोई मदादि कंटक होगा उसको झाड देनेके लिये राजाको पराजय दिखाया ।

तर गृध्रसरके तीरपर श्री विजयराघवको साष्टांगकी। वहांसे वीक्षारण्यमें हृत्तापनाशनसरके तीरपर श्री वीरराघवके पादका वंदन किया। वहांसे तोताद्रिमें जाकर भगवान् श्रीतुंगशयनका अभिवादन किया। वहांसे गजस्थलमें जाकर श्रीगजार्तिघ्न भगवान्का चरणचुंबन किया। वल्लिकीपुरमें श्रीमहाबलको प्रणाम किया। वहांसे भक्तिसारपुरमें श्रीजगत्पतिका पूजन किया। वहांसे ऐंद्रपुराधीश भगवान्के दर्शन करके, गोपपुरीमें श्रीगोपतिके दर्शन किये। तदनन्तर मल्लपुरमें श्री महावराहको निहारा। वहांसे महींद्राक्ष तीर्थमें जाकर श्रीपद्मलोचनका अर्चन किया॥

तदनंतर श्रीरंगमें जाकर साष्टांग कर श्रीरंगनाथके दर्शनपीयूषका पानकिया और स्तुतिभी की। कुछ काल वहां निवास करके वहांके लोगोंको यथाधिकार न्यासयोग, भक्तिमार्ग, प्रपत्ति प्रभृतिके उपदेश किये। श्रीरंगक्षेत्रमें योगिदास नामका एक ऐसा कुष्ठी था कि, जिसके समग्र अंग विशीर्ण होगये थे कहीं भी जा आ न सकता था, उसने भी मुनीश्वरोंके प्रभावकी कथा सुन कर लोगोंसे विनय किया कि, मुझे मुनीश्वरोंके आश्रमकी भूमिमें पहुँचादो। दयाकारण लोगोंने उसे वस्त्रमें डालकर मुनीश्वराश्रम समीपकी भूमिमें जा बैठाया। वह कुष्ठीभी मुनीश्वरोंके पदपद्मके पवित्ररजमें इधर उधर

रुढकने लगा, जिसी अंगको वह पवित्ररज लगतीथी वही निरामय होताजाताथा नितांत उसका कुष्ठ दूर होकर शरीर सुवर्णसा स्वच्छ होगया । युवावस्थाकीसी शरीरमें शक्ति आगई । वह पूर्वकुष्ठी योगिदास योगीश्वरोंके समीप पहुँच अनेक साष्टांग करके भक्तपादरजकी प्रशंसा करने लगा । और अंजलिबांधकर निवेदन किया कि, स्वामिन् प्रभो ! यह आपकेही श्रीचरणकी धूलिकाही प्रभाव है जो वह मेरा विशीर्ण देह परिपूर्ण होकर कांचन निभ होगया । मुनीश्वरोंने उसे राज्यलाभका वर दिया, कुछ दिन योगिदास वहांही रहा । इतनेमें एक दिन चोलदेशका राजा अपनी एकसौ कन्या और कलत्र सहित मुनीश्वरोंके दर्शनको आया, वहां पर सुंदरस्वरूप उस योगिदासको देखकर राजाकी सब कन्याओंका चित्त कामपीडित होगया । राजाकोभी यह वार्ता विदित होगई । राजाने मुनीश्वरोंसे योगिदासके कुलगोत्रादि स्वानुरूप सुनकर सौही कन्या योगिदासको देदी । राजाके पुत्र कोई था नहीं इससे राजाने अपने नगरमें जाकर योगिदासको राज्यसिंहासनभी देदिया । आप परमधामाकांक्षी होकर भगवत्सेवनकरता हुआ कुछ कालमें परमधामको पहुँच गया ॥

योगिदास भी स्वस्त्रीजनोंसहित रमण करताहुआ राज्यसुख भोगने लगा । कुछ कालके अनंतर योगिदा-

सके हृदयमें मुनीश्वरोंके दर्शनकी उत्कंठा उठी इससे श्रीरंगमें जाकर योगीश्वरोंको साष्टांग कर पाद दर्शनामृत पीकर चरणधूलि शिरपर चढाई। योगीश्वरोंनेंभी इसके कुशलादि पूँछे और स्वयंही योगिदासको अनपत्यतादुःख जानकर सौपुत्रहोनेका वर देकर योगिदासको राज्यस्थानपर भेजा श्री योगीश्वरवचनानुसार योगिदासके सौपुत्र परम वैष्णव भगवद्भावतसेवी हुए। क्यों न हो आम्रको आम्रही फलते हैं उसपरभी यदि दुग्धसे सींचा जाय फिरतो कहनाही क्या है। पुत्रोंको योग देख योगिदासने समग्र राज्यको सौभागसे विभक्त करके सौंहो पुत्रको एकएक भाग दे दिया। स्वयं श्वशुरवत् परमधामाकांक्षासे श्रीरंगमें योगीश्वरोंकी सेवामें आरहा। अल्पही कालमें योगीश्वरसत्संगप्रभावसे परमधामको प्राप्त हुआ। अहो मुनीश्वरोंकी करुणा! जो योगिदास केवल कुष्ठारोग्य मात्रके लिये आयाथा उसे आरोग्यसे अधिक एक राज्य दिया। फिर सौपुत्र दिये अंतमें परमधामको पहुँचा दिया। क्यों न हो परमोदार पुरुषसे यदि कोई कीर तुच्छसी याचना करे तो उदार पुरुष उसकी शक्त्यनुसार उसकी याचना मात्रपर ध्यान नहीं देते किंतु उसकी याचना पूर्णकर अपनी दान योग्यतासे और भी बहुत कुछ देतेही हैं॥

योगीश्वरभी श्रीरंगमें कुछ काल निवास करके श्री

रामक्षेत्रमें श्रीजानकीप्रियके दर्शनको पधारे । वहांसे श्रीनिवास स्थलको पधारे वहांसे सुवर्णभुवनमें सुवर्ण पूजनार्थ गये । वहांसे व्याघ्रपुरमें जाकर श्रीमहाबाहुका अर्चन किया । वहांसे आकाशनगरमें श्रीहरिका आराधन किया । उत्पलावर्तमें जाकर भगवान् शौरीका अभिवादन किया । पूर्णवती नगरीमें श्रीमहाप्रभु भगवान्को निहारा । वहांसे कृष्णपुरमें जाकर श्रीकृष्णका दर्शनामृत पान किया । तदनंतर विष्णुस्थानमें श्रीमुक्तिद भगवान्का आराधन किया । वहांसे श्वेतनदपर श्रीशांतमूर्तिभगवान्का सेवन किया । वहांसे अग्निपुरमें जाकर श्रीसुरप्रियका पाद वंदन किया। भार्गवस्थानमें भगवान् श्रीभार्गवको प्रणाम किये । वैकुंठनाम नगरमें श्रीमाधवके दर्शन कर श्रीपुरुषोत्तमके दर्शन किये । और भक्तसख भगवान्का अर्चन किया । चक्रतीर्थमें सुदर्शन भगवान्को देखा । कुंभकोणमें श्रीशार्ङ्गपाणिका अवलोकन किया । कपिस्थलमें श्रीगजार्तिघ्नको निहारा । वहांसे चित्रकूटमें श्रीगोविंदकी बलैयांलीं । वहांसे श्वेतपर्वतपर श्रीपद्मलोचनका आलोकन किया । वहांसे पार्थस्थलमें कृष्णकोटिमें विराजमान श्रीमधुद्विषका पादाभिवादन किया । पुरीमें श्रीमहानंद भगवान्के समीप आये । वहांसे बृह-

---

१ योगीश्वर पूजनसे अनुमान होता है कि, सुवर्णपदभी किसी भगवत्प्रतिमा विशेषकाही नाम है ।

त्पुरीमें जाकर भगवान् श्रीअमराश्रयकी रूप माधुरी पान की। वहांसे संगमग्राममें श्रीसंगमभगवान्की रूप माधुरी निहारी। शरण्यपुरीमें श्रीशरण्य भगवान्के दर्शन किये। सिंहक्षेत्रमें श्रीमहासिंहके समीप गये। निबिड क्षेत्रमें श्रीनिबिडाकार भगवान्को दंडवत् की, धानुष्क-स्थानमें श्रीजगदीश्वरका अर्चन किया। मोहनपुरमें श्रीकालमेघका निरीक्षण किया। मधुरापुरीमें श्रीसुन्दर भगवान्को प्रणाम किया। वृषभाद्रिपर श्रीपरमस्वामीके समीप गये। गुरुवरक्षेत्रमें नाथभगवान्की उपासना करके कायपुरीमें रमासक्त भगवान्के उपासनको गये। गोष्ठस्थानमें श्रीगोष्ठपतिकी उपासनाकी। दर्भसंस्तरमें आकर शयन किये भगवान् श्रीरामचंद्रका पूजन किया। भ्रमरस्थलमें श्रीबालाढ्यके दर्शन पाये। कुरंगक्षेत्रमें पूर्ण भगवान्का पूजन किया। विष्णुतटीमें श्रीअच्युतका चरणचुंबन किया। अनंतशयनमें श्रीपद्मनाभकी रूप माधुरी चाखी। इसी तरह श्रीनारायणके पुण्यस्थलोंमें पर्यटन करते हुए और तत्रस्थ लोगोंका भक्तिमार्ग दिखाते हुए काल व्यतीत करते रहे। क्यों नहो पर्यटनशील पुरुष मार्ग दिखानेमें बडे कुशल होते हैं, ये मुनीश्वरभी जिसके धामोंमें पर्यटन करते रहे उसीके धामका मार्ग लोगोंको दिखाते रहे॥

इसी प्रकार तीनों योगीश्वर इस पृथ्वीमंडलमें तीन ह-

जार तीनसौ पैंतीस वर्ष योगाभ्यास बलसे तीर्थयात्रा करके तदनंतर पुनः वेङ्कटाद्रिके दर्शनको पधारे । भक्ततीर्थमें जाकर तीनों मुनीश्वर सुखपूर्वक बैठेथे इतनेमें एकाएकी यह संकल्प उठा कि, और तो सबस्थानोंकी यात्रा की, किंतु श्वेतद्वीपकी यात्रा नहीं की यह सोच योग-बलसे श्वेतद्वीपको पधारे । वहां जाकर श्रीतारक भग-वान्की वंदनाकर और रूपमाधुरी पीकर स्तुति की । वहांसे क्षीरसागरपर जाकर शेषशायी भगवान्की स्तुति की, वहांसे सूर्यमंडलके समीप जाकर सूर्य मंडलस्थ भगवान्के दर्शन किये । वहांसे सत्यलोकमें जाकर भगवान् विष्णुको साष्टांग की । तदनंतर सामो-दलोकमें जाकर श्री अनिरुद्ध भगवान्केदर्शन करके प्रमोदलोकमें जाकर श्री प्रद्युम्नके दर्शन किये । आमो-दलोकमें भगवान् श्रीसंकर्षणके दर्शन किये । तदनंतर श्रीवैकुंठलोकमें जाकर अनेक मणियोंसे जटित दिव्यसिं-हासनपर विराजमान, श्रीभूलीलादेवियोंसे समन्वित, वि-विध पार्षदोंसे संसेव्यमान, अनंतसे स्तूयमान, श्रीखगेशसे वन्द्यमान, जय जय शब्दोंसे संबोध्यमान, श्वेतचामरोंसे संवीज्यमान, मुक्तामय चामीकर छत्रसे शोभायमान श्रीवै-कुंठनाथके दर्शन किये । साष्टांगकरके स्तुति की । भग-वदाज्ञानुसार अपने पूर्व अधिकारको पाकर सदा भग-वत्सेवाका सुखपाने लगे । जैसे विदेशगत पुत्रागमनसे

पिता आनंदको प्राप्त होता है वैसेही भगवत् भी भूलोकसे मुनीश्वरोंके लौटकर निजधाममें पधारनेसे परमानंदस्वरूप होकरभी आनंदसे अंगनमें न समातेथे ॥ इन मुनीश्वरोंके पवित्र चरित्रको जो लोग सुनते व सुनाते हैं व पढते हैं वे भगवद्धामको प्राप्त होते हैं ॥

श्रीभक्तिसार स्वामीकी कथा ।

दक्षिण देशमें कांचीपुरीके पूर्वभागमें पूर्वसमुद्रके पश्चिम भागमें, अनेक तडागोंसे विभूषित विविध आरामोंसे संशोभित भगवदालयोंसे पुण्य महीसार नामका नगर चूडामणि था । जिसमें श्रीरमाधिप

---

१ पूर्वकालमें अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, भार्गव, पुलस्त्य, अङ्गिरस आदि-ब्रह्मर्षि लोग सत्यलोक जाकर ब्रह्माको साष्टांग प्रणामकर पूछनेलगे कि, हे ब्रह्मन् ! हमारे लोगोंको तप करनेके लिये भूलोकमें अत्यंत उत्तम स्थान कौन है ? सो आप कृपापूर्वक बतलाइये हमलोग वहां तपकरके परत्व वस्तुका निश्चयकर आत्मलाभ करें.

ऐसा प्रश्नको सुनकर ब्रह्माभी आलोचनाकर विश्वकर्माको बुलाय कहने लगे कि, हे विश्वकर्मन् ! तुम इन महर्षियोंके संशयनिवारणकेलिये हमारे सामने ही सुवर्णतुला (धटा) लगाय उनमें एक भागमें ५० कोटिविस्तीर्ण पृथ्वी और दूसरा भागमें केवल महीसार (तिरुमलिशै) क्षेत्रका तुकडा रख तोलकर दिखाओ । ऐसी आज्ञा पाते ही विश्वकर्माने भी वैसाहीकर दिखानेमें समस्त पृथ्वीमंडलकी धटा हल्का हो महीसारक्षेत्रकी धटा गरिष्ठ होगयी । इसको देख महर्षि लोग निवृत्तसंशय हो तपकरनेके लिये उस महीसारक्षेत्रको गये हैं इसकारण महीसारनाम हुआ है.

भगवानका प्रधान मंदिर था । उस मंदिरके समीपही एक आश्रममें ब्रह्मविद्या विशारद भार्गवनामक मौनींद्र- ने तपकरना आरंभ किया । तपकी घोरतासे भीत होकर अमरावतीपति इंद्रने एक प्रधान अप्सराको आज्ञा दी कि, इस भार्गवके तपमें विघ्न करो । वह भी आज्ञापाकर कामको साथ लेकर मौनींद्रभार्गवके समीप आकर गानेलगी । काम पुरःसर गानकी सहा- यतासे स्मरशरसे भिन्न मौनींद्रके हृदयको उसने वश कर लिया । वश होकर भार्गव कुछकाल उसके साथ रमण करते रहे । रमणानंतर तपके नष्ट होजानेसे भार्गवका चित्त अत्यंत दुःखित हुआ किंतु बीती बातके शोचसे क्या बनता? ' हेयं दुःखमनागतम् ' इस सूत्रके मतसे भार्गव तीर्थयात्राको पधारे ॥

इधर इस अप्सराके उदरमें भगवत्कृपासे गर्भ ठहरा । गर्भमें भगवदाज्ञासे सुदर्शन चक्रका अंश प्राप्त हुआ । द्वापर कलियुगके संधिकाल समय पौष- मासके मघानक्षत्रके दिन लतागृहमें अप्सराने उस गर्भको प्रसवकर बालकको वहांही गेरकर अप्सरा तो चलने लगी, क्यों मोहरूप व्यापारिणी कठोर वेश्याजनोंकी दया कहां ? अथवा वह बालक भगव- च्चक्रका अंश होनेसे वेश्याजन हस्तके स्पर्श योग्यही न था । अथवा तेजके भयसे न स्पर्श किया हो । अप्सराके

चलेजाने अनंतर बालक रोनेलगा । रुदनध्वनि सुनकर महीसारपुराधीश भगवान् श्रीलक्ष्मीजीके सहित लतागृहमें पधारे और अपने कृपाकटाक्षसे बालकको तृप्त करके अदृश्य होगये । बालकभी भगवत् कटाक्षसे वर्षते कृपारसको पान कर चुप होगया ॥

इतनेही कालमें हरिदास नामका वेणुलावक (बाँस काटनेवाला) भगवद्भक्त उस वनमें आ पहुंचा। पहुँचकर एक कुंजमें बालकका शब्दसुना, उस शब्दके लक्ष्यसे खोजते खोजते एक कुंजमें एकले बालकको देखा। क्यों नहो जो श्रीसुदर्शन बडे बडे घोरयुद्धोंमें सबसे आगे बढ-कर अपना पराक्रम दिखाया करते हैं उनके तेजमय अंशको एकले क्या कुछ भय होसकता है। बालक अत्यंत सुंदर होनेसे हरिदास मोहित होगया। और सोचने लगा कि, इस शिशुका पिता कौन है ? माता कौन है ? क्यों यह बालक यहां एकला पडाहै ? कुछ कालतक जब कुछभी विदित न हुआ तो वेणुलावक हरिदासने विचारा कि, मुझ अपुत्रको भगवत्ने पुत्र कृपा कियाहै इसका पालन करना चाहिये. यह निश्चयकर बालकको

---

१ यहांपर शंका है कि, बालक अप्सराके चले जानेके अनंतरही क्यों रोने लगा, यातो अप्सराके होतेही रोनाथा अथवा कुछ कालपीछे रोनाथा. इसका यह समाधान है कि, यदि अप्सराके होते बालक रोता तो कदाचित् बाल-कको अप्सरा उठालेती बालकको तो भगवत् कृपा रूपही दुग्धपान करना था। कुछ काल पीछे यों बालक नहीं रोया कि, भगवद्दर्शनके समय प्राप्त होजाने-पर भक्तोंको धैर्य कहां ।

उठाकर हृदयसे लगाय घरमें लेजाकर पालनार्थ अपनी गृहिणीको देदिया ॥

गृहिणीनेभी परमस्नेहसे आलिंगन कर सुगंधित जलसे अभिषेक किया और समीपमें जो विष्णु मंदिर था उसमें ले जाकर बालकसे भगवत्को प्रणामकराया वेणुलावक दंपतीने बहुत उपाय किये कि,बालक कुछ दुग्धादि पान करे, किंतु उस बालकने तो कुछ दुग्धादिपान न किया और प्रतिदिन बढाता जाताथा, क्यों न बढे ? बालक तो अक्षय भगवत्कृपादुग्ध पान कर चुकाथा । बिना कुछ खान पानके प्रतिदिन बालचंद्रमाके तुल्य बालककी वृद्धिको देखकर लोग बालकको देवता जानने लगे । बालकका यह प्रभाव सुनकर एक वृद्ध ब्राह्मण गोदुग्ध लेकर गया, जाकर देखा तो बालक दोलामें पडा झूल रहाहै । ब्राह्मणने दुग्धको बालकके सन्मुख रखकर प्रणाम करके कहा कि, हे योगीन्द्र ! इस दुग्धको पान कीजिये । उस वृद्ध ब्राह्मणकी प्रार्थनासे बालकने उस पवित्र दुग्धको पान किया । इसी तरह वे ब्राह्मण दंपती बालकको दुग्ध निवेदन करते रहे । और बालकभी उस दुग्धको पीतारहा. एकदिन बालकने कुछ दुग्ध पीकर शेष दुग्ध ब्राह्मण दंपतीको दिया, उननेभी योगिप्रसाद जान अपने भाग्यको सराहकर वह दुग्ध पान किया । पान करतेही दोनों यौवनको प्राप्त होगये । और योगीके

वर प्रभावसे ब्राह्मणीको उस चक्रांश बालयोगीका परिचारक शमादिगुण संपन्न एक बालक उत्पन्न हुआ ॥

वह पूर्वबालक सातवर्ष वेणुलावकके घर रहा। तदनन्तर तपश्चरणार्थ शिक्षाके लिये श्रीमहद्योगी स्वामीके समीप गया। उनसे सब प्रकारसे योग सीखकर सात गुफाओंमें सौ सौ वर्षकी समाधि लगाई। भगवत्ने प्रसन्न होकर विश्वरूपसे दर्शन दिया, मुनीश्वरने भी दंडवत् प्रणाम कर स्तुतिकी। भगवत्की गाढ भक्तिकी कारण इनका श्रीनाम भक्तिसार प्रसिद्ध हुआ ॥ ये योगिराज जिस वनमें विराजमान थे उसी वनमें एक बेर श्रीमहादेवजी और श्रीपार्वतीजी चले जाते थे। श्रीपार्वतीजीने भयंकर वनमें एकाकी योगीको देखकर श्रीमहादेवजीसे कहा कि, इस योगीश्वरका चरित्र और प्रभाव जानकर आगे चलना चाहिये। श्रीशंकरने भी स्वीकार किया। दंपती योगिश्वरके समीप गये। और बोले कि, हे योगिन्! कुछ वर मांग, हमारे दर्शन वृथा न हो सकता है ॥

योगिराजने भी नेत्र खोलकर श्रीमहादेवजीको देख कहा कि,हे सुरश्रेष्ठ हर!मुझे भगवत् कृपासे किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं फिर आप क्यों आयास उठाया ? अपने स्थानको पधारिये, निरपेक्ष शिरोमणि मुनीश्वरका यह वाक्य सुनकर श्रीईश्वर यों बोले कि ' इस तरह देवोंका

निरादर करना उचित नहीं इससे जो इच्छा हो मांगना चाहिये ' उससमय योगीश्वरके समीप एक अधसिली गुदडी पडी थी उसमें सूई डोरा लगा हुआथा योगीश्वरने कहा कि ' इस सूईमेंसे यह डोरा न निपटे ' यह सुन श्रीमहादेवजीने क्रुद्ध होकर ' क्या तुम मेरा प्रभाव नहीं जानते जो इस तरह परिहास करते हो ? अब मेरा प्रभाव देखो और अपनी रक्षाका शोच करो ' यह कह तृतीय नेत्र खोल दिया, नेत्र खोलतेही अग्निकी वर्षा होने लगी। श्रीभक्तिसार योगीश्वरनेभी अपना श्रीपाद पसार दिया, इनके पादमें नेत्र था, उसमेंसे घोर ज्वाला निकलने लगी तीनों लोक तप्त होगये, इंद्रादि देवता कांपने लगे और कहने लगे कि, ' प्रमथ नाथने आज किस भस्म गुप्ताग्निकोजाछेडा '। नितांत मुनीश्वर चरण नयनाग्निसे ईश्वरके तृतीय नेत्रकी अग्नि शांत होगई । श्रीमहादेवजीने चकित होकर श्रीपार्वतीसे कहा ' प्रिये ! नववैष्णवका प्रभाव देखो देखो मुझसेभी इनका प्रभाव अधिक है'

---

१ यहांपर शंका है कि श्रीमहादेवजी भी तो भगवत्के परम भक्त परम वैष्णव हैं फिर मुनीश्वरसे उनका पराजय क्यों हुआ ? इसका समाधान यह है कि, पिताको छोटे पुत्रपर स्नेह विशेष होता है तद्वत् पुत्रत्वेन श्रीमहादेवजी और मुनीश्वर भगवत्को समानही है किंतु मुनीश्वर नवीन पुत्र हैं इससे और यहतो भगवत्भक्तोंकी लीलामात्रहै न किसीका विजय और न किसीका पराजय । अथवा उस समय भगवत्के समीप श्रीनारद बैठेहोंगे जो दोनों भ्राताओंको अकारण परस्पर लडा दिया ।

यह कहकर श्रीयोगीश्वरकी प्रशंसा करके वैष्णव-कथा कहते हुये दंपति अपने स्थानको पधारे उस दिनसे श्रीभक्तिसार स्वामीका अक्षपाद यह नामभी प्रसिद्ध हुआ.

एक वेर आल्वार वनमें बैठे अपनी गुदडी सीं रहेथे कि,आकाशमें शार्दूलपर एक सिद्ध उत्तरको चला जाता-था,जब आल्वारके ऊपरसे सिद्ध निकलने लगा तो शा-र्दूल रुकगया सिद्धने शार्दूलको बहुतेरा मारा पीटा किंतु शार्दूल ऊपरसे न निकलसका। सिद्धने चकित होकर चारोंओर देखा कुछ कारण नहीं जानपडा, नीचेको दृष्टि गई तो सिद्धेश्वरने मुनीश्वरको देखा तब भूमिपर उत-रके मुनीश्वरको साष्टांग नमस्कार कर अज्ञात उल्लंघन प्रवृत्तिकी क्षमा मांगी और बहुतसी प्रशंसा की। नितांत क्षमापाकर निवेदन किया कि, आप गुदडी सीनेका क्यों श्रम करते हैं ? मेरे पास यह सिद्ध गुदडी है इसे स्वी-कार करें। मुनीश्वरने पूंछा, कि इसमें क्या विशेष है ? यह सुन सिद्धजीने गुदडीकी बहुतसी प्रशंसा की,अंतमें यह कहा कि इसके धारणसे मनुष्य अमर होजाता है, इसमें जो घंटिका है इसके स्पर्शसे लोह सुवर्ण होजाता है। मुनीश्वरने कहा कि, कष्टकी वार्ता है जो तुमने इस गुदडीपर इतना श्रम उठाया। यह कह अपने निज पाद-

१ केवल भगवत्कृपासेही रक्षित पुरुष।

तलकी रेणु उठाकर सिद्धाको देकर कहा कि,इस रेणुके स्पर्शसे और तो क्या पर्वतभी सुवर्णका होजायगा । जो मनुष्य इसका सेवन करेगा वह आरोग्य अजर अमर और और युवा होजायगा और कहांतक कहूं यह रेणु भव-सागरके तरनेको अद्वितीय नौका है ॥

सिद्धने उस रेणुपुंजको लेकर शिरपर धर साष्टांग कर मुनीश्वरसे बिदा मांगी । सिद्धजी रेणुकी परीक्षार्थ वहांसे चित्रकूटपर आये । आकर उस रेणुको चित्रकूटपर गेरा, गेरतेही चित्रकूट कनकमय होगया । तब तो सिद्धने सोचा कि, इस कनकके लोभमें बहुतोंका विनाश होगा । इस कारण योगबलसे उस पर्वतको पृथ्वीमें गाडदिया और पुनः मुनीश्वरके निकट आकर साष्टांग कर बहुतसी प्रशंसा ठान आज्ञा पाकर अपने स्थानको गया ॥

श्री भक्तिसार स्वामीनेभी एक गुफामें जाकर चिरकालतक समाधि लगाई । दैवात् पूर्वोक्त मुनीश्वर उधरसे निकले तो देखा कि, गुफामेंसे तेज निकल रहाहै तेजसे अनुमान किया कि इस गुफामें कोई महानुभाव अवश्य है, यह जान श्री भूतयोगी श्रीमहद्योगी तो प्रदक्षिणाकर चलेगये । श्रीसरोयोगी एकले गुफामें गये । क्यों न हो सबमें जो ज्येष्ठ भ्राता होता है उसको कनिष्ठ भ्राताके देखनेकी बहुत लालसा होती है । दूरसे मुनी-

श्वरको देख दंडवत् की, श्रीभक्तिसारनेभी योगदृष्टिसे देख उठकर दंडवत् की, दोनों परस्पर अत्यन्त प्रेमसे मिले, भगवद्विषयकवार्तालाप करतेरहे। तदनंतर दोनों महात्मा मयूरपुरीको गये, वहां कैरवर्णीनामक सरोवरपर कुछ दिन निवास किया. तदनंतर श्रीसरोयोगीने कहा कि, भगवन्! मुझे तीर्थयात्राको आज्ञा मिलनी चाहिये। यह सुन श्रीभक्तिसारही बहुत व्याकुल हुये। नितांत ग्रामसे कुछ दूरतक सरोयोगी स्वामीको पहुँचाने गये, वहां परस्पर साष्टांगकर आलिंगन करके अश्रुधारा बहाते हुये वियुक्त हुये। परस्पर वियोग दुःखका अनुभव करते हुये सरोयोगीस्वामी तीर्थयात्राको पधारे। श्रीभक्तिसार उसी मयूरपुरीमें आकर भगवत्का ध्यान करने लगे॥

एक दिन स्वामीके तिलककी मृत्तिका निपटगई, इससे बहुत शोच हुआ कि, तिलकके विना तो कुछ भी सत्कार्य करना नहीं लिखा. अब क्या कियाजायगा? यह शोच भगवत्पादयुगकी प्रशंसा की, भगवत्ने प्रगट होय ऐसी कृपासे स्वामीको देखा जो समग्र वेदशास्त्र स्वामीके जिह्वाग्र होगये। तदनंतर भगवत् अन्तर्हित होगये। मुनीश्वर उस विद्याका ध्यान करते हुये योगनिद्राको प्राप्त हुये. स्वप्नमें भगवान्ने आज्ञा दी कि, इस सरोवरकी मृत्तिका लेकर तिलक करो। मुनीश्वरने निद्रा त्यागके सरोवरसे मृत्तिका ले एक वृक्षके नीचे बैठ श्री-

द्वादश नामसे द्वादश तिलक धारण किये । कुछ काल वहां रहकर मुनीश्वर कांचीको पधारे, वहां भगवत्का पादवंदन कर दर्शनामृत पान किया और कुछ काल वहांही निवास किया. एक खनिकृष्ण नामके वेदवेदांत-पारीण ब्राह्मणने श्रीभक्तिसार स्वामीकी बहुत प्रशंसा सुनी इस कारण खोजते खोजते कांचीमें स्वामीको पाया समीप पहुँचे साष्टांगकर दासताके लिये प्रार्थना की। स्वामीनेभी 'इसके द्वारा जीवोंका बहुत उद्धार होगा' यह सोच उसकी प्रार्थनासे उसे महामन्त्र अष्टाक्षरका उपदेश दिया। ब्राह्मणपुंगव कुछ काल स्वामीकी सेवा-मेंही रहा ॥

मुनीश्वरने वहांही एक गुफामें समाधि लगाई। वहां एक वृद्धा नारी श्रीभक्तिसारस्वामीकी बहुतसी प्रशंसा सुन वरप्राप्तिकी कामनासे नित्यप्रति मुनीश्वरकी गुफाके आगे गोमयसे लेपन दे चौकपूरकर मुनीश्वरका पूजन करने लगी। मुनीश्वरने समाधिसे उठकर उस वृद्धासे कहा मैं तेरी सेवासे बहुत संतुष्ट हुआ हूं जो इच्छा हो वर मांग। वृद्धाने आज्ञा पाकर अक्षय यौवनका वर मांगा। मुनी-श्वरके 'तथास्तु' कहतेही वह वृद्धा युवती होगई। मुनीश्वरने प्रसन्न होकर राजदारात्वका अपनी ओरसे वर दिया, वृद्धा स्वामीको साष्टांगकर घरको विदा हुई ॥

एकबेर कांचीनरेश उधरसे जो निकला तो इस

सुंदरीको देख कामपीड़ित होय इसे ग्रहण करलिया। तदनंतर कुछ कालतक दोनों राजभवनमें रमण करते रहे। इतने कालमें राजाका यौवन स्वाभाविक क्षयी होनेसे क्षीण होगया। उस स्त्रीका यौवन तो वरके कारण अक्षय होनेसे यथावत् बना रहा। उसके अक्षय यौवनको देख चकित हो राजाने कारण पूछा। स्त्रीने श्रीभक्तिसारस्वामीकी कृपाका फल बताकर कहा कि, खनिकृष्ण शिष्य संयुक्त श्रीभक्तिसार स्वामीकी सेवा करो, तुमको भी यह फल मिलेगा। राजाने तुरंत दूतभेजकर खनिकृष्णजीको बुलाया, आदरसे पूजनादिक करके कहा कि, अपने गुरुको यहां लाओ, मैं बहुतसा कुछ धनवस्त्रादि दूंगा. स्वामीका राजसभामें आना और राजासे बुलाया जाना अनुचित समझ खनिकृष्णजी कोपसे रक्त नेत्रहो कहा कि, वे सर्वेश्वर भगवान्के भक्त हैं तू उनको क्या देगा, तेरेसे नराधमके समीप वे नहीं आते। कटु वचनोंसे क्रुद्धहोकर राजाने आज्ञा दी कि, ये गुरुशिष्य मेरे राज्यमें न रहने पाय। खनिकृष्णजीने स्वामीके समीप आकर सब वृत्तांत निवेदन कर अन्यत्र जानेके लिये आज्ञा मांगी. स्वामीने कहा, जब तुम जातेहो तो मुझे यहां रहनेकी क्या अपेक्षा है? घडी भर धैर्य करो मैंभी भगवान् शेषशायीसे आज्ञा लेकर तुम्हारे साथ चलता हूं। स्वामीने भगवत् मन्दिरमें जाकर साष्टांगकर

प्रार्थना की कि, हे भक्तवत्सल सर्वेश ! राजाने खनि-
कृष्णका निरादर किया है इससे वह अन्यत्र जाता है. मैं
उसका वियोग सह नहीं सकता इस कारण उसीके साथ
जाना चाहताहूं और मेरा मानसमधुप आपके पदपद्मका
वियोग नहीं सहन कर सकता इस हेतु हे दयासिंधो !
आपभी मेरे साथ पधारें । भगवान् निजभक्तों बिना
किसके यार ? प्रार्थना सुनतेही स्वीकार कर प्रस्थान
कर दिया । भगवत्के प्रस्थान करतेही नगरके समग्र
देवता भगवत्के पीछे होलिये । बस, आल्वारके निक-
लतेही नगर शून्यसा होगया, मेदिनी कांपने लगी
औरभी बहुतसे अशुभ होने लगे । राजा उन अशु-
भोंसे डरकर अपने अमात्योंसहित श्रीस्वामीके चरण-
कमलोंपर आ गिरा, रोने लगा, बहुतसी स्तुति कर कर-
जोर क्षमा मांगी । स्वामीने उत्तर दिया कि, जिसका अप-
राध किया है उससे क्षमा मांगो । राजाने तुरंत खनिकृ-
ष्णजीके चरण पकड लिये कहा कि, शरण आयेको
सब कोई क्षमा देताहै आपकोभी क्षमा देनी चाहिये ।
पाठकवर ! भगवद्भक्तोंके मनरूपवस्त्रपर सिवाय भगव-
द्भक्तिरंगके और सब रंग कच्चे होते हैं, इससे राजाके
क्षमा मांगनेसे झट प्रसन्न होगये । और स्वामीसे निवेदन
किया कि, अब तो राजा क्षमा मांगताहै इसे क्षमाकर
पुनः पुर प्रवेश करना चाहिये । स्वामी तुरंत पुरिको

लौट निज स्थानपर आगये भगवंत् भी अपने मंदीरको पधारे। देवतालोगभी निजस्थानोंको चले गये॥

तदनंतर श्रीभक्तिसार स्वामीने भगवत्के समीप जाकर प्रशंसा कर क्षमा मांगी। निवेदन किया कि, हे भगवन्! आपके एकवेर भ्रूके हिलानेसे कोटानुकोट ब्रह्मांड नष्ट होतेहैं और उत्पन्न होतेहैं ऐसे हो करभी आप मुझ अधमके कहनेसे मेरे पीछे पीछे भ्रमण करतेहो आपके इस असीम वात्सल्यगुणका किसप्रकार वर्णन करूं? अब मेरी यही प्रार्थना है कि, आप यहांही निवास करते हुये अपने भक्तोंका परिपालन करें। तदनंतर स्वामीने प्रबंध कल्पनाकी॥

कुछ दिन वहां ही निवास करनेके अनंतर खनिकृष्णजीको तीर्थयात्राका मनोरथ हुआ। स्वामीसे तीर्थ यात्राके लिये प्रार्थना की। स्वामीभी तीर्थयात्राके लिये उद्यत होकर भगवत्से आज्ञा पाकर और भगवत्को हृदयसरोजमें रख दक्षिणकी ओर पधारे। प्रथमही कनकापगाके तटपर जाकर स्नान किया। वहांसे कुंभकोणमें जाकर भगवत्के दर्शनकर दशावतारानुसार स्तुति की। और वहां ही चौदहसौ वर्षतक निवासकर योगसमाधियोंसे भगवत्का रूपामृत पान किया॥

---

१ यह शेषशायी भगवान् अपने भक्त भक्तिसारकी प्रार्थनानुसार करनेसे आजतक "यथोक्तकारी" ऐसानामसे प्रसिद्ध है.

वहांसे शार्दूलपुरमें पधारे । जब स्वामी आतेथे तो मार्गमें एक ब्राह्मण अपने विद्यार्थियोंको वेद पाठ पढा-रहाथा किंतु स्वामीको वर्णान्तर जान अज्ञतासे अभ्युत्थान न दिया न प्रणामही किया, प्रत्युत शून्य ब्रह्मकी तरह तूष्णीं होगया । भक्तापराधसे उसकी सब विद्या विस्मृत होगई । स्वामीके आगे चलजानेसे चाहा कि, शिष्योंको पाठ पढाऊं परंतु पढाता क्या, विद्याका तो लेशभी शेष न था। जहां अपने स्वामीके भक्तोंका निरादर हो वहां सरस्वती कैसे रहती ? क्या सरस्वतीको भगवत्का भय न था जो वहां रहती । पंडितराज निज-विद्याके वियोगसे अत्यंत व्याकुल होकर सोचने लगे, जब और कोई कारण विदित न हुआ तो भागकर स्वामीके चरणोंमें जागिरे करजोर प्रार्थनासे क्षमाकी याचना की। स्वामीका मौनव्रत था इस हेतु संभाषण तो कुछ न किया किंतु कृष्णव्रीहिके दानेको नखोंसे फाडकर पंडित और छात्रोंपर पटक दिए उसी समय वेदाध्ययनका वाक्य "कृष्णानां व्रीहीणां नखनिर्भिन्नम्" जो यह विद्या विस्मृत हुईथी उससेभी कुछ विशेष स्मरण होगई। समग्र ब्राह्मण स्वामीको साष्टांग कर स्वस्थान को चलेगये ॥

स्वामीभी उस नगरके प्रधान मंदिरमें भगवद्दर्शनको पधारे । स्वामीने प्रथम बाहरसे मंदिरकी जो प्रदक्षिणा की तो जिधर जिधर स्वामी जातेथे उसी उसी ओरको

भीतर श्रीइंदिरापति भगवान्का मुख घूमता जाताथा। इस लीलाको एक हरिपाद नामके ब्राह्मणने देख अनुमान किया कि, भगवत्का कोई परम प्यारा भक्त बाहर है उसीको भगवन्मूर्ति देखरहीहै यह निश्चय सोच बाहर आया तो श्रीभक्तिसार स्वामीको पाया। साष्टांग करके हरिपाद स्वामीको यज्ञशालामें लेगया, वहां कनकभाजनमें स्वामीके पादोंका प्रक्षालन कर चरणोदक शिरपर धार निवेदन किया कि, आज मेरा यज्ञ सफल हुआ और तो क्या? मेरा जन्मही आज सफल हुआ, जो स्वामीजीने स्वयं पधार मुझ अधमके यज्ञको सुशोभित किया। यज्ञशालामें जो और पंडितलोग बैठेथे उनसे स्वामीका आदर सह्य न हुआ इससे हरिपादको 'अरे मूर्ख! व्यासके समान विद्वानोंको छोड तू एक विष्णुचिह्नाभिमानी ब्राह्मणकी पूजन करता है इस तेरे अनुचित कृत्यसे हमने तुझे जातिसे बाहर किया' यह कहकर यज्ञशालासे चल दिये। हरिपाद अत्यंत उदासीन होकर स्वामीके मुखकमलको देखने लगा। स्वामीने निजहृदयसरोजमें विराजमान भगवान्को प्रार्थना की कि, हे भगवन्! अपने भक्तके विरोधीयोंको निराश करनेके लिये प्रकट हूजिये। यह प्रार्थना सुन-

---

१ यहांपर युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें शिशुपालका दृष्टान्त समझना. किंतु भक्तप्रार्थनासे अपना रूप दिखाकर द्वेषियोंकोभी रक्षा किये। इतनाही भेद है।

तेही श्री भू लीला सहित अनेक देवताओंसे अनुगम्य-मान व्यास वाल्मीकि प्रभृति महाभागवतोंसे सेव्यमान भगवान् सभामें प्रकट हुये । तब तो सब ब्राह्मण चकित होकर निजापराधकी क्षमाके लिये कभी भगवत्को साष्टांग करें कभी देवगणको साष्टांग करें कभी स्वामीको साष्टांग करें और अपराध की क्षमा मांगे । कृपासागर स्वामीने उन्हें क्षमा दी । और भगवत्को हृदयकोशमें विराजमान किया । देवतालोगभी स्वामीकी प्रशंसा करते हुये अपने २ धामको पधारे ॥

ब्राह्मणोंनेभी हरिपादका यज्ञ कराना आरंभ किया । प्रत्युत भयसे प्रीतिपूर्वक सावधानतासे यज्ञ कराया क्यों नहो भगवद्भक्तोंकी सदाही जय है । स्वामीभी भगवत्के दर्शनको पधारे । यज्ञांतस्नान करके हरिपाद समग्र ब्राह्मणों सहित स्वामीके दर्शनको गया । जाकर साष्टांगकरके चरणोदक स्वयं लिया औरोंकोभी दिया। स्वामीने भी उसे अभीष्ट वर दिया ॥

तदनंतर स्वामीने खनिकृष्णके सहित श्रीरंगादि क्षेत्रोंके दर्शन करते हुये, चार हजार सातसौ वर्ष काल इस भूमिको पवित्र कर भगवदाज्ञासे श्रीवैकुंठपुरमें जाकर अपना अधिकार पाया ॥

श्रीशठकोपस्वामीकी कथा ।

पांड्य देशमें ताम्रपर्णी नदीके तीर परम सुहावनी शोभापुंज सब प्रकारसे संपन्न सुंदर वीथिकाओंसे संशोभित वन उपवनोंसे अलंकृत एक श्रीनगरी नामकी नगरी थी। जिसका नामांतर कुरु राजाके पालनसे कुरुका यहभी था। जो नगरी धनाढ्योंके निवाससे धनमयी होरही थी। जिसमें सकल शास्त्रोंके वेत्ता और सकल शिल्पोंमें निपुण नर निवास करते थे। जो पुरी अनेक भगवद्भक्तोंसे संसेव्यमान थी। और भगवत्के अनेक मंदिरोंसे विभूषित और पवित्र थी उन मंदिरोंमें श्रीपाथोब्धिजासख भगवान्‌का मंदिर प्रधान था ॥

उस पुरीमें भगवत्के परम भक्त योगिशिरोरत्न बलधारी नामके महापुरुष निवास करते थे। उनके चक्रपाणि नामका सुत हुआ। चक्रपाणिजीके रक्तधामा पुत्र हुआ। उनके पाटललोचन नामपुत्रने जन्म लिया। पाटललोचनजीके सत्कारी नामका पुत्र प्रकटा। पाटललोचनजीने जब अपने सुतको युवा होते देखा तो विवाहकी चिंता की। उसीपुरीके समीप एक ग्राममें कंजाक्षवक्षा नामके भक्त निवास करते थे उनकी नाथनायकी नामकी कन्या थी, उस नाथनायकीके साथ सत्कारीजीका विवाहोत्सव किया ॥

सत्कारीजी कुछ काल नाथनायकीके साथ रमण करतेरहे किंतु पुत्र कोई न हुआ इस दुःखसे ताम्रपर्णीके तीरपर श्रीअष्टाक्षरमंत्रके जपसे भगवत्का आराधन करने लगे। कुछ कालमें प्रसन्न हो भगवत्ने दर्शन दिया। सत्कारीजीने दर्शन पाय साष्टांगकर स्तुति करनी आरंभ की। भगवत् स्वयंही पुत्रवर देकर अंतर्हित होगये। सत्कारीजीभी वरको लेकर निजपुरीमें आय भगवद्दर्शन करके अपने घरको गये। भगवत्ने श्रीविष्वक्सेनजीको इनके घर जन्मलेनेकी आज्ञा दी॥

वरप्राप्तिसे एक वर्ष पीछे वैशाखमासके विशाखा नक्षत्रमें शुक्रवारके दिन (अलि) कर्कट लग्नके समय नाथनायकीके उदरसे श्रीविष्वक्सेनजीका अवतार प्रकट हुआ। उस दिनतक कलिके केवल ४३ दिनही व्यतीत हुये थे॥

बालकके जन्म लेतेही श्रीनारायणने स्वयं सूतिकागृहमें पधारकर "जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः" यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् "इत्यादिसे अपना दिव्यमंगल विग्रहका दर्शन दे अपने प्यारे उस बालकको ज्ञानोपदेश दिया। सूतकानन्तर मातापिताने बालकका 'मार' यह श्रीनाम नियत किया। यह बालक गर्भावस्थामें ही भगवद्ज्ञान संपन्न हो जानेसे जो प्राकृत शिशुओंको रोदनादिक उत्पन्नकरने-

वाला शठनाम वायु है उसको केवल हुंकारसे ही हटा-दिया । इससे "शठकोप" ऐसा प्रसिद्ध नाम हुआ ॥

उसी ज्ञानरूपामृतके पानसे बालक ऐसा तुष्ट होगया कि, जननीका दुग्धभी न पिया और प्राकृत शिशुके तरह रोदनादिकभी नहीं किये। पुत्रकी इस दशाको देख माता पिता परम दुःखित हुये । बालकको पर्यंकपर लिटा कर भगवत्के प्रधान मंदिरमें लेजाकर प्रार्थना की कि, यह बालक आपनेही कृपाकर दिया है, आपही स्वीकार करें। यह सुन भगवत्ने कहा कि, यह तुम्हारा पुत्र केवल नाम मात्र है किंतु मेरे सेनेश्वरका अवतार योगिशिरोमणि है इसको सामान्य बालक मत समझो । यह भगवद्वाक्य सुन दंपती परितुष्ट होकर उसी मंदिरमें बालकको रख पालन करने लगे । कुछ दिनमें बालक घुटुरुवन चलने लगा ॥

मंदिरमें भगवत्के सन्मुख श्रीलक्ष्मीजीने इसी बाल-कके लिये श्रीशेषजीकी इम्लीवृक्षका रूप धारण कर-रक्खा था इस श्रीइम्लीके मूलभागमें एक खोड़ इतनी बड़ी थी जिसमें एक बालक भलीभाँति बैठ सके। यह बालक एक दिन मंदिरमें घुटुवनचलता हुआ उस इम्लीकी खोड़में जा बैठा । जाकर बैठतेही पद्मासन लगाय नेत्र मूंदकर मानसमें भगवच्चरणकमलयुगलका ध्यान करने लगा।इस अवस्थामें बालककी सोलह वर्षकी आयु होगई॥

इस महायोगसमाधिसे प्रसन्न होकर भगवत्ने इस भक्तशेखरको निज दर्शनामृत पान कराया। भगवद्दर्शनामृत पातेही योगिशिरोमणिने मनसे साष्टांगकर स्तुति की शरीरसे साष्टांग करने योग्य तो इम्लीमें स्थानही न था। अवाप्तसर्वकाम स्वामीको किसीभी पदार्थकी अभिलाषा नथी इस हेतु भगवान्ने न्यासयोग भक्तियोग प्रभृतिके ज्ञानकी और समग्र वेदशास्त्र जिह्वाग्र होनेकी कृपा की। तदनंतर श्रीआल्वाररत्नने प्रबंध कहना आरंभ किया। प्रबंधमें जिस जिस भगवन्मूर्तिका श्रीनाम उच्चारण किया उस उस भगवन्मूर्तिने स्वयं स्वामीके समीप पधारकर दर्शन दिये। आल्वार निरंतर श्रीश्रीनिवास महाराजके प्रबंध कहकर तत्पादपंकजरसामृत पान करने लगे ॥

इतनेमें श्रीभक्तिसार स्वामीके शिष्य भगवत्के परमभक्त कालग्रामनिवासी श्रीभद्रकेशरीजीकी सती नामकी धर्मपत्नीके उदरसे चैत्रमासके चित्रानक्षत्रके दिन श्रीविष्वक्सेनजीके गणाध्यक्ष कुमुदनामक भगवत्पार्षदने अवतार लिया। क्यों नहो श्रेष्ठदास स्वामीका अनुसरण करतेही हैं विना अपने स्वामीके रमणीय स्थानकाभी वास स्वीकार नहीं करते। ये महानुभाव कवितामें अत्यंत प्रवीण थे और इनकी कवितामें माधुर्यके बाहुल्यसे इनका मधुरकवि यह नाम प्रसिद्ध हुआ॥

श्रीमधुर कविजी परम विरक्त थे। कुछ दिन कोल-ग्राममेंही भगवद्ध्यानामृत पान करते रहे। तदनंतर भगवद्धामोंकी यात्राको पधारे। यात्रामें श्रीयमुनाजीके तटपर गोवर्द्धन गिरिमें एकगंभीर गुफामें योगाभ्यास करते हुए श्रीनाथमुनिजीके पास कुछ दिन निवास किया। वहांही एक दिन दक्षिण दिशामें अनेक सूर्योंके सदृश श्रीआल्वारका तेज दिखाई पड़ा, उस तेजके महत्त्वसे चिंतन किया कि-'प्रथम तो यह तेज भगवत्का है, नहीं तो किसी योगीश्वर शिरोभूषणका है। तेजके समीप चल तेजस्वीका दर्शन अवश्य करना चाहिये' यह सोच उसी क्षण तेजको लक्ष्य करके अन्यमार्गको छोड़ सीधे वेगसे दक्षिणको पधारे। कविचूडामणि जब पधारे तो वन नदी पर्वत आपसे आप मार्ग देतेथे। क्यों नहो महानुभावोंकी कौन अनुकूलता नहीं करता॥

कविराजने कुरुकापुरमें पहुँच इम्लीकी खोड़में श्रीआल्वारावतंसके दर्शन पाय साष्टांगकर करजोर स्तुति की। स्वामीनेभी प्रसन्नतासे कृपाकटाक्ष गेरा। एकही वेर स्वामीके चितवनसे मधुरकविजीको समग्र वेदशास्त्रोंका ज्ञान होगया॥

तदनंतर श्रीकविजीने जो श्रीआल्वारमुकुटने प्रबंध

---

१ यह स्थान अयोध्याके समीपमें कहते हैं।

२इस गुफाको आजकलभी वहांके लोग नाथगुफा नामसे बोलते हैं।

रचे थे उनके ज्ञानार्थ प्रार्थना की । क्यों नहो कविलोग चतुरोंके चूड़ामणि होते हैं इससे जो सारपदार्थ था उसीकी याचना की । स्वामीने कहा—'यद्यपि यह गुह्यतम पदार्थ है तथापि तुमको सुनाताहूं क्रम पूर्वक श्रवण करो' तदनंतर कुछ कालमें समग्र निजप्रबंधं सुनाये । कविजी गुरुको समग्र तत्त्वोंसे अधिक जान श्रीआल्वारभूषणकी ही सेवामें रहते रहे । और श्रीआल्वार प्रबंधार्थ जैसा मधुर पीयूष पीकर कौन ऐसा मूर्ख है जो वहां डेरा न जमाय वा अन्यत्र चला जाय ॥

भगवत्ने एकवेर इन प्रबन्धोंको सुन प्रसन्न होकर श्रीआल्वारतिलकको अपनी प्रसादी वकुलमाला कृपा की, इस कारण श्रीआल्वारका वकुलाभरण यहभी नाम प्रसिद्ध हुआ ॥

ऐसेही यह प्रपन्नजनकूटस्थ महानुभावने इस भूलो-

---

१ ऋग्वेदसार—तिरुविरुत्तम् । १०० गाथा ।
यजुर्वेदसार—तिरुवाशिरियम् । ७ गाथा ।
अथर्वणवेदसार—पेरियतिरुवन्दादि । ८७ गाथा ।
सामवेदसार—तिरुवायमोळि । १००० गाथा ।

इन चार प्रबंधोंको जो पूर्वमेंही " सहस्रशाखां योऽद्राक्षीद्द्राविडीं ब्रह्मसंहिताम् " इति देखे थे, उनको इस भूलोकमें प्रकट किये अर्थात् इन प्रबन्धोंका भी अपौरुषेयत्व और अनादित्व सिद्ध है । जब पाठक लोग अक्षरशः चारों वेदोंसे इन प्रबन्धोंका अर्थ निर्मत्सरादिभावसे अनुसंधान करेंगे तबही परस्पर सामानाधिकरण्य मालूम होगा ।

कमें लोकप्रपंचको छोड परात्पर श्रीमन्नारायणके चरण-नलिनकोही ध्यानकर परज्ञान परमभक्ति संपन्न हो पैंतीस वर्षकी अवस्थामेंही अर्चिरादिमार्गसे श्रीवैकुण्ठ पहुँच श्रीवैकुण्ठनाथका चरणयुगलमें अन्तरङ्ग होगये॥ इस कारणसे आजकालभी श्रीवैष्णवसंप्रदायमें "श्रीशठकोपन्" ऐसा भगवच्चरणपादुकाको सांप्रादायिक नाम प्रचलित है.

श्रीकुलशेखरस्वामीकी कथा।

दक्षिण दिशाके केरलदेशमें एक चोलपुरी महा प्रसिद्ध नगरी थी। जिसके चारोंओर वन उपवन भली भाँति बनाये गये थे। वह पुरी बड़ी ऊंची ऊंची अटारि-योंसे सदा शोभायमान रहतीथी। उस पुरीने नायिका-जनाननके व्याजसे मानो अनेक कुमुदिनीपति इकट्ठे कर लिये थे। उस चोलपुरीका दुर्धर्षनाम राजा भगवत्का परम भक्त बड़ा यशस्वी और सकलविद्या संपन्न था। उस राजाकी धर्मपत्नीके पवित्र उदरसे कलियुग २८ वां वर्ष पराभव संवत्सर माघमासके पुनर्वसु नक्षत्रके दिन भगवत्की कौस्तुभ मणिअंश एकपुत्र अवतार लिया। पिताने इस बालकका नाम कुलशेखर नियत किया। क्यों नहो कोकिल जब बैठेगा तो आम्रपरही बैठेगा,

कौस्तुभ स्वयं रत्नपदार्थहै इस हेतु नररत्नकेही घर अवतार लिया ॥

राजकुमार बालचंद्रमाकी तरह दिन दिन बढता हुआ एक दिन युवावस्थाको प्राप्त होगया । राजकिशोरने समग्र वेदशास्त्र भली भाँति पढे और धनुर्वेदका भी पूर्ण अभ्यास किया । भगवत्कृपासे शारीरिक बलभी पूर्ण था ॥

इस राजा कुलशेखरको दृढ व्रतकरके एक पुत्र और इला नामवाली एक पुत्री भी भगवत्कटाक्षसे हुई और सकल संपत्तीभी परिपूर्ण थी. तथापि निर्मम, निरहङ्कार भावसेही प्रजापालन करते थे । नित्य सभामें अनेक विद्वद्गणोंसे परात्पर वस्तुको खोजकर श्रीमहाविष्णुही श्रेष्ठदेव और उनकी आज्ञाही सत्य सिद्धान्त, बाकी सब मिथ्या है ऐसा उस महानुभावका निश्चय ज्ञान होगया । अनन्तर श्रीमहाविष्णुके अनेक अवतारोंमें विचारकरते २ राम और कृष्ण इन दो अवतारोंही भक्तोंका अत्यन्त मंगलकारी हैं. ये विना दूसरा उपायोपेय नही हैं ऐसा निश्चयभी कर लिया ।

पिताके अनंतर राज्यसिंहासनको सुशोभित करने लगे और नित्यप्रति यज्ञदानादि भले प्रकार करते थे । भगवद्भक्तोंकी तो सेवा तन मन धन तीनोंसे बजातेथे । इनकी सभामें और सबका प्रवेश इनकी आज्ञासे होता था,

किंतु भगवद्भक्तोंका तो अनिवारित (विनाही आज्ञाके) प्रवेश होताथा। इनके समय किसकी शक्ति थी जो भगवद्भक्तोंकी ओर नेत्रभी ऊंचा करसकता। यद्यपि ये आल्वारराज भगवत्के सभी अवतारोंके भक्त थे तथापि श्रीरामावतारमें विशेष अनुरक्त थे। क्यों न हो जन्मही श्रीराघवके प्रसादी पुनर्वसु नक्षत्रका है। श्रीकुलशेखराल्वार धनवान् और राजाथे इस कारण वैष्णव महानुभाव इनके समीप आना नहीं चाहते थे, किंतु ये अत्ययन्त नम्र और भगवत्के भक्त थे अनेक प्रकारकी भगवत्कथा सुनतेथे और सुनातेथे, नितांत वैष्णव लोगोंके विना इन्हें कल न पडती थी इस हेतु वैष्णवजन आतेहीथे॥

एक दिन इनके समीप वैष्णव लोग जो आये तो अमात्यके सिखाये हुये द्वारपालने वैष्णवोंको रोककर कहाकि 'महाराज रनवासमें हैं, अभी आप भीतर नहीं जासकते यहां ही बैठो'। वैष्णव भगवद्भक्त तो गुणग्राही होते हैं इस हेतु 'वैष्णवगृहका निवास तो कीटोंकोभी मुक्तिप्रद होता है' परस्पर यह कहते हुये बैठगये। यद्यपि जैसे मदमत्त मतंगजपर प्रथमही अंकुशपात हो

---

१ वैष्णवपदसे आज कलके गुलानार रंगसे रँगे चित्तवाले लिंगधारणमात्र कुशल वैष्णवों जैसे उस समयके वैष्णवोंको मत जानना। अन्यथा धनके कारण स्वेच्छया समीप जाते किन्तु उस समयमें सदसद्विवेकी, ऐहिकामुष्मिक फलभोग विरक्त, शमदमादि संपन्न, श्याम रंगसे रँगे चित्तवाले वैष्णव लोग होते थे। इस समय वे सब बातें उलटी होगई हैं।

वैसे यह वैष्णव जनोंपर प्रथमही निरोधांकुशपात था इससे संभव था कि, कोप अवश्य होता किंतु भगवद्भक्तोंके समीप कोपकी क्या गति, इसीकारण ग्रंथकारने यहां 'सात्त्विकानां कुतः क्रोधो भगवद्दास्यसेविनाम्' ऐसा लिखा है, अथवा क्रोधादि धर्म जो हैं वे सब चित्तके धर्म हैं वह वैष्णवका चित्त भगवच्चरणरसास्वादसमुद्रमें डूब रहाथा फिर क्रोध होता किसको । अथवा श्रीकुलशेखरात्वारके द्वारकाही यह प्रभाव था कि क्रुद्धोंके क्रोध दूर होजायँ और सामान्य मानवोंकोभी क्रोध न हो, क्या कथा फिर भागवतोंकी जो उन्हें क्रोध होता ॥

श्रीआल्वारनेभी श्रीभक्तनिरोधकी कथा रनवासमें सुन जहां वैष्णव लोग विराजमान थे वहांही तुरंत आकर साष्टांगकर चरणपंकज पकड़ निरोधकी क्षमा मांगी । पाठक महाशय ! यदि कोई और होता तो यही कहता कि, यह सब अपराध द्वारपालका है, किंतु श्रीकुलशेखर राजाशिरोमणिने अपराधको अपनेही शिरपर रखकर क्षमा मांगी । क्यों न हो, अपराधभी तो भक्तोंके साथ संबंध रखताथा इससे वहभी दूसरेके शिरपर रखना आल्वारको अभीष्ट न हुआ । भक्तजन जानतेथे कि, राजाका कुछ अपराध नहीं इससे एकही वेर क्षमा मांग-

---

१ राज्ञि धर्मिणि धार्मिष्ठाः पापे पापरताः परे । राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ॥ इस न्यायसे ।

नेसे क्षमा देकर अपनी ओरसे आशीर्वाद औरभी दिया। क्यों नहो, दाता परमउदार भक्तजन याजक राजशेखर कुलशेखर अल्वार, फिर क्यों न एक ही बेर याचनासे क्षमा मिलती ॥

तदनंतर राजराजेश्वरने द्वारपालको कहा कि, दुष्ट ! मेरे यहां वैष्णव लोग अनिवारित पधारतेहैं, तैंने जान बूझकर अपराध कियाहै तुझे दंड मिलेगा। इस अवसरपर यदि भक्तजन चाहते तो द्वारपालको मनमाना दंड दिला सकतेथे किन्तु भक्तोंने तो द्वाररक्षकके क्षमा मांगनेके बिनाही राजशिरोमणिसे द्वाररक्षकको क्षमा दिलाई। क्यों नहो, इसीका नाम तो क्रोधदमन है और वासना विनाश है श्रीगोस्वामीजीनेभी कहा है- "फणि मणिसम निजगुण अनुसरहीं परम कृपा सागर" करुणामय श्रीमुकुंदके भक्तथे इससे उचित किया उनने जो अपने प्रभुकी करुणावृत्तिका अनुसरण किया ॥

तदनंतर राजशिरोरत्न भक्तोंको रनवासमें लेगये, वहां दिव्य सिंहासनपर विराजमान कर कनक कलशसलिलसे पादप्रक्षालन कर वह चरणोदक स्वयं पान किया,औरभी सब पुत्रकलत्रादि बांधवोंको पान कराया। वस्त्र भूषणादिकसे वैष्णवोंकी सेवा करके उनके साथ भगवद्वार्ता करते हुये अपनी सभाको पधारे। सभा-

स्थानमेंभी प्रथम वैष्णवोंको विराजमान करके आप बैठे और निरंतर भगवत् कथा सुनते और सुनाते रहे ॥

श्रीकुलशेखरराजशेखरके अमात्य वैष्णवविरोधी होनेसे वैष्णवागमनसे रुष्ट थे और बहुत उपाय करते रहे कि, जिससे आल्वारका चित्त भक्तजनोंकी ओरसे विमुख होजाय। किंतु वहां तो भक्तिवेल बद्धमूल होचुकी थी इससे अमात्योंका यह अभीष्ट सिद्ध न हुआ, चर्मचक्षु अमात्य विचारोंको यह विदित नथा कि, हमारे महाराज उस कौस्तुभ रत्नके अवतारहैं जिसको धारण करनेवाला वह लक्ष्मीपतिभी भृगुपद चिह्नको रत्नसेभी विशेष शोभायमान मानकर सदा नूतन बनाये रखते हैं ॥

एकवेर अमात्योंने सभासिंहासनपर विराजमान मानद श्रीआल्वारकी बहुतसी प्रशंसा करके राजनीति धर्म सुनाकर न्यायादिकनमेंही सदा कटिबद्ध रहनेके लिये भक्त सत्संगत्यागके लिये निवेदन किया । महाराजाल्वारनेभी सुनकर हँस दिया और कुछ वार्ता चित्त न धरी । क्यों न अमात्य प्रथम प्रशंसा करते, ठग प्रथम कुछ न कुछ लोभ दिखाकरही गांठ काटनेका दाँव लगाया करताहै. किंतु कुशलजन न उस लोभमें फँसतेहैं, न अपनी गांठ कटवाते हैं. एक वेर आल्वार सभामें विराजमान थे कि, वैष्णव लोग आये,उठकर उनको साष्टांग कर श्रीआल्वारराजने सिंहासनपर विराजमान किया ॥

इतनेमें भगवत्कथालाप करते करते मध्याह्न होगया, वैष्णव लोग मध्याह्न संध्याको चलने लगे, आल्वारभी अपने वस्त्र भूषण उतार वहांही गेर कर वैष्णवोंको कुछ दूर छोड़ स्नानार्थ रनवासमें पधारे। अमात्योंने सभामंडपमें आकर भूषण पड़े जो देखेतो वैष्णवोंकी चुगलीका सुंदर अवसर जान भूषण उठाकर कोशमें रखादिये और आप अपने घरोंको चलदिये। श्रीराजशेखरने स्नान कर अष्टाक्षरका जप किया, तदनंतर श्रीसीतापतिका पूजन कर भोग लगाय प्रसाद सेवन करके अनुचरोंको कहा कि, सभामंडपमें मेरे भूषण वस्त्र पडेहैं लाओ. अनुचर लोग तुरंत सभामंडपमें आये किंतु भूषण वहां होते तो मिलते, बहुत खोजकर निवेदन किया कि, सभामंडपमें भूषण नहीं है। यह सुन श्रीमहाराजने समग्र द्वारपाल और अमात्योंको बुलाकर बहुत क्रुद्ध होकर उनके आलस्यको सूचित करके आज्ञा दी कि, इसी समय भूषण लाओ नहीं तो प्राणदंड मिलेगा। यद्यपि श्रीअल्वारको क्रोध होना यह ऐसाहै कि, जैसे चंद्रमाभी तपनेलगे किंतु आल्वार क्या करते जो ये लोग वैष्णव विरोध करतेथे उसका पलटा लेनेका आल्वारकोभी आजही शुभ अवसर आया इससे विवश क्रुद्ध होना पड़ा। अमात्योंने करजोर निवेदन किया कि, आपके प्रभावसे चोरका तो नामभी सुनाई नहीं देता

किंतु राजभवनमें और सब पुरुषोंका तो आज्ञानुसार परीक्षितोंकाही प्रवेश होताहै, जो श्वेतमृत्तिका धारण करके आवें उसको तो पूछनेतककीभी आज्ञा नहीं। सीधा महलमें आताहै इससे ये भूषण वैष्णवोंने चुराये होंगे अब आपही उनसे भूषण लीजिये । यह पातक वचन सुनतेही आल्वारतिलकने कानोंपर हाथ रखकर भगवन्नाम उच्चारण किये। और उनसे कहा कि ' यहांसे चले जाओ तुमलोगोंका मुख देखने योग्य नहीं। भगवत् और सब पापोंकी क्षमा देतेहैं भागवतनिंदाकी क्षमा नहीं देते'। अमात्योंने दंडवत् करके कहा कि, हम जिस दंडके योग्य हों उस दंडसे महाराज हमें दंडितकरें । क्यों न ऐसा विनीतवचन मुखसे कहते दुष्टोंके दुष्टतासमुद्रका क्या कोई पारावार पासकताहै ? । श्रीआल्वारावतंसने कहा कि, मैं अभी तुमको दंड नहीं देता किन्तु प्रथम इस वैष्णवापवादका प्रक्षालन करके पीछे तीक्ष्णदंड दूँगा ॥

तदनंतर नृपतिनिकायमंडनाल्वारने एक महासर्प मँगाकर कनक कलशमें रखा दिया और समग्र नगर निवासियोंको सकल परिजनको और निखिल अमात्यादि भृत्यको बुलाकर कहा कि, लोगो ! मेरा वचन सुनो, हरिभक्त कभी चोरी नहीं करते. यदि मेरा यह कथन सत्य है तो इस कलशमें वर्तमान सर्प मुझे दंशित नहीं करेगा. यदि

हरिभक्तभी चोरी करते हैं तो यह सर्प दंशित करे, यह कह उस कलशका ढकना उतार सर्पको हाथमें उठालिया। क्या आश्चर्य है आल्वार कौस्तुभमणिका अवतार हैं. कहा भी है कि 'अचिन्त्यः खलु मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः'। सर्प नीलमणिमालाके सदृश सीधा हस्तमें लटकता रहा। मानो आल्वारका चरणवंदन करना चाहता था। इस चरित्रसे अमात्योंके शिर झुक गये, सब लोग चकित होगये, वैष्णवोंकी पताका फहराने लगी, देवतालोग साधुवादसहित पुष्पवर्षा करने लगे, अप्सरालोग नाचने लगीं, अपने भक्तके इस पुण्य चरित्रको देख श्रीजनककिशोरी और लक्ष्मणजी सहित श्रीरामचंद्र महाराज प्रकट हुये। आल्वारने देखतेही साष्टांग की, श्रीमहाराजने आल्वा-

---

१ आल्वारने यह प्रतिज्ञा बडे चातुर्यसे की है कि, यदि हरिभक्तोंके हृदय स्थानपर भगवत्की जगह चौर्यने पाद रख दिया है तो यह समयही प्रथम तो हमारे जीवन योग्य नहीं. द्वितीय हम वैष्णवोंकी बडी प्रशंसा किया करते हैं जब उनमें चोरी सिद्ध होगई तो हम इन दुष्टोंको कैसे मुँह दिखायेंगे यह सोचकर कहा कि–'यदि हरिभक्त भी चोरी करते हैं तो यह सर्प मुझे दंशित करे' यदि आल्वारका सचातुर्य यह अभिप्राय न होता तो जैसी प्रतिज्ञा की है उससे उलटी ही प्रतिज्ञा करते। पाठकगण आल्वारने इसी चोरी विषयक और जो उस दिन भक्त लोग वैष्णव आये उनकेही विषयक प्रतिज्ञा नहीं की किंतु भगवत्की समग्र सृष्टिके वैष्णवमात्र कर्तृक चौर्य मात्राके अभावकी प्रतिज्ञा की है। चौर्यमात्रके निषेधसे औरभी समग्र दोषोंका अभाव ध्वनित होता है क्योंकि प्रायःसब दोषोंमें चौर्य मिलाही रहता है। वाह वाह !! धन्य था वह समय जिसमें वैष्णव जन ऐसे थे। इस समयके करुणामय वैष्णवलोग दोषोंके साथ कैसी निष्ठुरता करें ?।

रको उठाकर गलेसे लगाकर वर मांगनेकी आज्ञादी. आल्वारराजने भक्तिवर मांगा श्रीमहाराजने उसी वरको दिया । यद्यपि आल्वार प्रथम कुछ भक्तिरहित न थे किंतु आसवसेवी लोग आसवदातासे आसवके उत्कृष्ट और विशेष होनेकी ही सदा याचना किया करते हैं । तदनंतर आल्वारने एक प्रबंध रचकर श्रीराघवेंद्रके चरणोंमें भेंट किया मानो वरादियेका पलटा उतार दिया । क्यों नहो भागवतलोग स्वयं भगवत्के ऋणी नहीं बनते प्रत्युत भगवत्को अपना ऋणी बनाये रखते हैं ॥

भगवत्ने आज्ञा दी कि, तुम्हारी कन्या लीलादेवीका अवतार हैं उसका मुझसे विवाह करदो, स्वामीने इस वचनको सुनकर अपना जन्म सफल माना । विवाहका उत्सव आरंभ हुआ स्थानस्थानपर मंगल गान और नृत्य होनेलगे, नगरमें नवीन पताकायें उड़ने लगीं, द्वारद्वारपर वंदनवार और जलकलश सुशोभित किये-गये । क्यों नहो, कन्या देखिये तो लीलादेवीका अवतार वर तो साक्षात् श्रीदशरथराजकुमार, दान करनेवाले नृपति चक्रचूड़ामणि श्रीकुलशेखराल्वार । फिर जितना उत्सव हो उतनाही कमती. नगर उस समय नवधनुषखं-डसे शोभायमान जनकपुर जैसा प्रतीयमान होताथा ।

---

१ मुकुन्दमाला नामक संस्कृत ग्रन्थ ।

नितांतभगवत्ने उस कन्या चूडामणिका कर ग्रहण किया। स्वामीनेभी सब प्रकारके उत्तमसे उत्तम पदार्थ दक्षिणामें देकर शेष जो प्राण थे उनको कन्यावरके ऊपरसे न्यौछावरकर नेहनयननीरसे मार्गसेचनपूर्वक दोनोंको विदा किया॥

स्वामीका यह प्रभाव देख अमात्यलोगोंने भयभीत होकर वे वस्त्रभूषण निवेदन कर करजोर क्षमा मांगी, भगवत्के भक्त सदा कोमल हृदय होते हैं इससे तुरंत क्षमा देदी। अथवा ऐसे परम मंगल विवाहके अनंतर आल्वारने दंड देना उचित नहीं समझा। और ऐसे मंगल समय अपराधिभी मनमानी वस्तु पाताही है। यद्यपि अमात्य परम दुष्ट थे तथापि श्रीकुलशेखराल्वारके साथ संबंध रखतेथे इस हेतु भगवत्कोभी उनका दंडित होना स्वीकार न था इसलिये इस समय प्रकट होय मंगलोत्सव रचा दिया जो आल्वार अमात्योंको दंड न देसके। अन्यथा औरही समय याचना करते॥

नृपति शिरोमणि श्रीकुलशेखराल्वारकी श्रीरामचन्द्र महाराजमें अत्यंत भक्ति थी इस कारण सदा श्रीरामायण कथा सुनते थे सुनाने वाले पंडितजी महात्मा राजाकी प्रकृष्ट भक्तिको जानते थे। इस हेतु श्रीजानकीजीको चुरानेके स्थानमें मायामयी सीताके चुरानेका वृत्तांत

सुनाते । एक समय वे पंडितजी महाराज अन्यत्र गये थे तो उनके स्थान उनके पुत्र कथा सुनाने जाते, किंतु ये बालपंडितजी श्रीआल्वारकी भक्तिसे विज्ञ न थे, इस हेतु साक्षात् श्रीजानकीजी महारानीके चोरी होनेकी कथा कह सुनाई । यह कथा सुनते ही आल्वारतो क्रोधसे ऐसे रक्त भयंकर होगये कि, यदि वहां यमभी होते तो भयसे भागजाते । इस कथासे आल्वारको इतना आवेश हुआ कि, यहभी विचार न हुआ कि, हम प्रथम क्या कथा सुनतेथे आज हमने क्या कथा सुनी है । इन पिता पुत्रोंमें कौन सत्यवक्ता हैं कौन हमको वंचित करता है । किंतु उसी समय खड्गको हस्तमें लेकर अपने अश्वपर बैठे पवनसेभी विशेष वेगसे दक्षिणदिशाको दौडे । इस भक्तिके आवेशसे देवताजन ससाधुवाद कुसुम वर्षाने लगे, गंधर्वगण यश गाने लगे । इधर आल्वार दौडे, उधर श्रीरामचंद्रमहाराजने इस आवेशको देख श्रीजानकीजी और श्रीलक्ष्मणजीसहित पुष्पकविमानमें विराज

१ पाठक महाशय ! श्रीपंडितजीको मिथ्या भाषी नहीं जानना किंतु ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खंडके १५ अध्यायमें यह भी कथा है कि, उस समय अग्निने आकर श्रीरामचंद्र महाराजसे प्रार्थना की कि, दुष्ट रावण स्वामिनी श्रीजानकीजीको चुराने आताहै इस हेतु इस मायामयी मेरी स्वामिनीको अपने पास रखिये और मेरी साक्षात् इन स्वामिनीजीको मुझे दीजिये यह वार्ता श्रीरामचंद्र महाराजनेभी स्वीकार की, इससे मायामयी ही सीता चुराई गई ।

लंकाकी ओर होय राजचूडामणिके सन्मुख आनेको प्रस्थान किया। पुष्पकविमान तो अभी आताही रहा श्रीकुलशेखरालवारने तो अपने अश्वको समुद्रके तीरपर जा पहुँचाया, जातेही अश्वको समुद्रमें बढ़ाया अश्वको बढ़ायाही था कि, पुष्पकविमान आपहुँचा श्रीमहाराजने अपने श्रीहस्तसे आल्वारको लौटाया। और कहाकि, ' हम रावणका वध करके जानकीको लेआये हैं ' यह अक्षर सुने तो आल्वारको शांति हुई। इसी तरह कुछ काल भक्तिरसामृत पानकर इस भूमिको त्याग आल्वारने भगवत्कंठको सुशोभित किया। मानो इस भूमिपर श्रीजनककिशोरीकी चोरी होगई इस दोषसे आल्वारने भूमिका पालन त्याग कर श्रीरंगादि दिव्यदेशोंकी यात्राक्रमसे बदरीनारायणतक भगवदर्चावतार दिव्यमंगल विग्रहोंको दर्शन कर अपनी आयु ६७ वर्षकी अवस्थामें ब्रह्मदेश क्षेत्रमें इस प्राकृत शरीरको छोड आर्चिरादिगतिसे परम पदको पधारदिये।

---

१ पाठकवर! वे श्रीरामचंद्र महाराजही थे जो आल्वारको लौटालाये और कोई होता तो अपने बलसे कभी न लौटा सकता किंतु आल्वार लंकापर जाही पहुँचते। भगवान्ने यह भी सोचा कि, आल्वारको इस समय अपना पराया कुछ सूझता नहीं उधर लंकामें है विभीषणाल्वार ऐसा नहो कि, कुछ अमंगल होजाय इससे तुरंत भागते आये। आकर भी श्रीमहाराजने प्रथम रावण वधके अक्षर उच्चारण किये। यदि भगवान् ऐसा न करते तो आल्वार कभी न रुकते किंतु रावणवधार्थ लंका पर पहुँचतेही॥

इन महानुभावने अपने प्रबंधमें श्रीवेंकटेश भगवानसे प्रार्थना की थी कि, "मैं आपके निज मंदिरकी देहली होकर सदाकाल आपके मुखारविंदका ही दर्शन करें" ऐसी की हुई प्रार्थनाको श्रीवैकुण्ठपति "अहं स्मरामि" इसरीति स्मरणकर निज मणिमय मंडपकी देहलीरूपमें अङ्गीकार करके "सदा पश्यंति" इस श्रुति प्रमाण-करके सदा दर्शन देरहे हैं। इसकारणसे अद्यापि सर्वत्र भगवानका निजमंदिरकी देहलीको "कुलशेखरन्पडि" ऐसा सांप्रदायिक नाम प्रचलितहै ॥

श्रीपद्मिनीजीकी कथा ।

दक्षिण दिशामें परम पवित्र विमलजलवाहिनी पुष्प फल पत्रोंसे परिपूर्ण महीरुह सुशोभित तटोंवाली हेमा-पगानदीके तटपर निचुलापुरीमें कमलोंसे संकुलित एक सरोवर था, जिसमें विविध हंस कारंडवादिक क्रीडा करतेथे, जो कुररी निकररवसे मनको हरता था जो मधुकर झंकारसे गंधर्वालापकोभी तिरस्कृत करताथा, उस सरोवरके एक शुभ सुंदर कमलमें उत्तरानक्षत्रके दिन श्रीलक्ष्मीजीने अवतार लिया ॥

उसी समय सुमन वृष्टि होनेलगी, अप्सराजन नाचने लगीं, श्रीब्रह्माजीने आकर साष्टांगकर बहुत लंबी चौड़ी

स्तुतिकी क्यों न करते ब्राह्मण प्रकृति हैं न। तदनंतर श्रीपद्मिनीजीसे बिदाले श्रीरंगनाथको वह वृत्तांत निवेदन किया॥

उसी समय पांड्यदेशनरेश श्रीरंगनाथकी सेवाको जातेथे। उनने पद्माकरमें इस बालिकाको देख अतिशयितरूपलावण्यादिसे अनुमान किया कि, यह बालिका श्रीलक्ष्मीजीका अवतार है। तब तो साष्टांग कर स्तुति करके कनक विमानपर विराजमान कर बालिकाको अपने घर लेगये। और भलीभांति परिपोषण करनेलगे। और इस बालिकाका पद्मिनी नाम नियत किया। श्रीपद्मिनीजी चंद्रकलाके सदृश दिन दिन पुष्ट होती हुई यौवनको प्राप्त होगई। और श्रीरंगनाथके गुण सुन उन्हीमें चित्त लगाया; उन्हींकी कथा कहने सुनने लगी॥

श्रीरंगनाथभी ब्रह्मादिदेवतावृंदको साथ ले दुलहा बनकर खगेशपर विराजमान होय निचुलापुरीमें आ पहुंचे। राजाभी भगवान्‌को आगेलेने गये दर्शनकर साष्टांगकी, और अपने घरमें निवासदिया। श्रीब्रह्माजीको पुरोहित बनाय श्रीपद्मिनीजीका करसमर्पण किया। श्रीरंगनाथभी श्रीकरको स्वीकार कर श्रीपद्मिनीजी सहित निज निवासको पधारे॥ ७॥

श्रीयोगिवाहनस्वामीकी कथा ।

पूर्वोक्त निचुलापुरीके समीप कावेरी नदीके तटपर कार्तिकके रोहिणी नक्षत्रके दिन भगवान्के श्रीवत्सका अंश एक ब्राह्मणका शालिक्षेत्रमें बालकरूपसे अवतार हुआ ॥ अनन्तर निचुलापुरवासी पाणवंशोत्पन्न एक पुरुष इस बालकको देख अति आनन्दसे बालकको अपना घर लेजाय गोदुग्ध आदि पवित्र आहरसे पालन करता था, यह बालक भगवत्कटाक्षपात्र होनेसे साधारण बालकोंका व्यापार छोड भगवच्चरणारविन्दोंको ध्यानकर हाथमें वीणाले नारदजीके तरह ज्ञानवैराग्यके साथ सदा भगवद्गुणही गाते थे। इनको पाणवंशमें पालन होनेके कारण "पाणर्" ऐसा लौकिकनाम प्रसिद्ध हुआ।

योगिराज जन्मसे ही भगवान्के परम भक्तथे, सदा भगवान्का ध्यान करते और भगवन्नाम जपते। ये वीणावादनमें ऐसे निपुणथे कि, इनकी वीणाके शब्दसे पाषाणभी जल होजाते, पशुपक्षीभी चित्रलिखेसे श्रवण करते रहते। एकबेर श्रीरंगनाथने अपनी प्रियाके समीप इनके

ग्रंथकारने यह कुछ नहीं लिखा कि, इनका अवतार किस प्रकारसे हुआ, और कहां ये पुष्ट हुये, कहांसे वीणा सीखी। किंतु इनके वीणावादन नैपुण्यसे अनुमान होता है कि, कदाचित् इनका जन्म किसी अप्सरासे हो और वह बालकको पटक अपने घर चलदी हो। सिद्धजनोंको समग्रकृत्योंमें व्याजमात्रकी अपेक्षा होती है।

वीणावादनकी प्रशंसा की, श्रीजीने निवेदन किया कि, बड़े कष्टकी वार्ता है जो आपने अपने ऐसे अनन्य भक्तको दूर पटक रक्खाहै। यह सुन भगवान्‌ने लोकसारंग नामके मुनीश्वरको आज्ञा दी कि, मेराभक्त कावेरीके तटपर वीणा बजारहा है उसे अपने स्कंधपर बिठाके शीघ्र मेरे समीप लाओ। यह आज्ञा पाकर प्रहर्ष पूर्वक लोकसारंगमुनिने कावेरीपर जाकर भक्तशिरोमणिसे अपने कंधेपर बैठनेको निवेदन किया। जब उनने कंधेपर बैठना स्वीकार न किया तब स्वयं बलसे उन्हे कंधेपर बिठा श्रीरंगनाथके आ भेट किया। उस दिनसे इनका नाम मुनिवाहन और योगिवाहन प्रसिद्ध हुआ॥

श्रीयोगिवाहनाल्वारने भगवत्‌की चरणवंदना कर स्तुति की। तदनंतर भगवद्ध्यानामृत पान करते हुए ५० वर्षमें आयुकी अवस्थामें परमधामको पधारे॥८॥

श्रीभक्तांघ्रिरेणुस्वामीकी कथा।

चोल देशमें हेमापगा नदीके कूलपर एक मण्डंकुडि नामका ग्राम था। वास्तवमें वह ग्राम पृथ्वीका मंडन ही था। मानो कालिके भयसे पृथ्वीका सौंदर्य्य ही संकुचित होकर बैठ रहा था ऐसा यह ग्राम सुहावना था। इस ग्रामके निवासी एक पूर्वशिखावालाब्राह्मण भगवद्भक्तकी

धर्मपत्नीने अपने उदरसे मार्ग मासके महेंद्र (मघा) नक्षत्रके दिन भगवत्की वनमालाके अंशसे एक बालकको प्रकट किया ।

बारहवें दिन पिताने इनका श्रीनाम विप्रनारायण यह नियत किया । ये महानुभाव दिन दूने रात चौगुने बढकर वनमालाके सदृश पुष्ट होगया, क्यों नहो अवतार अवतारीका अनुकरण करताही है। पंचम वर्ष प्राप्त होनेपर पिताने उपनयन कराय अध्ययनका आरंभ कराया । इनने अल्पही कालमें समग्र शास्त्रोंको जान उनमेंसे भगवद्भक्तिरूपसार निकाल उसीका आस्वाद लेना प्रारंभ किया ॥

तदनंतर श्रीरंगक्षेत्रमें आकर भगवत्सेवा करने लगे और माधुकरी वृत्तिसे अपना निर्वाह करतेथे। ये आल्वाररत्न अत्यंतही नम्रप्रकृति थे, इसकारण इनका नाम भक्तांघ्रिरेणु यह प्रसिद्ध हुआ । अहो प्राचीन महानुभावोंके चरित्र जिननें भक्तांघ्रिरेणु यह नाम स्वीकार किया । इस समयका कोई वैष्णव होता तो अपना नाम भक्तशिरोमणि भक्तचूड़ामणि ऐसा कुछ स्वीकार करता ॥

श्रीरंगक्षेत्रमें आकर विचार किया कि समग्र कैंकर्योंमेंसे कौनसा कैंकर्य श्रेष्ठ है जिसे मैं करूं । नितांत सोचकर निश्चय किया कि, श्रीकृष्णावतारमें स्वयं जाकर मथुरामें मालाकारसे माला याचना की है इससे सबसे

उत्तम मालाकैंकर्य है इस कारण तुलसीका वन लगाना चाहिये ॥

तबतो इनने नगरसे बाहिर,जाकर एक भूमिपर अच्छे अच्छे वृक्ष और गुल्म लगाये उनके बीच तुलसीवाटिका निर्माण की, वहां ही निजनिवासको कुटिया बनाली ॥

नित्यप्रति प्रातः उठकर कावेरीमें स्नानादि करके और मंत्रराजका जप करके,तुलसीपुष्प उतारकर माला-बनाकर श्रीरंगनाथके भेट करतेथे । क्यों न माला बना-कर भेटकरते, आपका अधिकारही भगवत्के श्रीकंठको विभूषित करनेका है । तदनंतर वैष्णवगृहोंसे भिक्षाले निज कुटीमें जाकर भगवान्को निवेदनकर स्वीकार करते । फिर सायंकाल जलसेचनादिसे उस तुलसीवनकी सेवा करते ॥

इस सेवासे प्रसन्न होकर भगवान्ने श्रीलक्ष्मीजीके समीप इनकी प्रशंसा की । श्रीजीने सुनकर कहा कि, भगवन् ! ऐसे निरीह भक्तपरभी आपकी माया कुछ करसकतीं है ?

भगवान्ने उत्तर दिया कि, मेरी मायाका प्रभाव अति अपारहै, यदि मैं इनपरभी अपनी मायाको गेरूं तो इसी समय अपने कर्तव्यसे चूकजाय । श्रीलक्ष्मीजीने कहा मैं इस बातको नहीं मानती । भगवान्ने कहा अच्छा मेरी मायाका प्रभाव देखो ॥

तुरंत एक अप्सराको आज्ञा दी कि, तू भक्तांघ्रिरेणुको मोहित करनेके लिये भूलोकमें जन्मले । आज्ञापातेही उसने उसी समीप करंबनूरमें जन्म लिया । पिताने इसका नाम देवदेवी नियत किया । कुछकालमें देवदेवी यौवनको प्राप्त हुई । एकदिन देवदेवी अपनी भगिनी सहित श्रीरंगनाथकी सेवाको जातीथी मार्गमें मुनीश्वरको तुलसीवनसेवा करते देख, भागिनीसे कहा कि, इस मुनीश्वरको तू वश करसकतीहै ? अथवा मैं वशकरूं ? उसने मुनिश्वरके प्रभावको देख उत्तर दिया कि, इनको कोईभी वश नहीं करसकती, यदि तू वशकर लेवें तो मैं तेरी दासी हुई । देवदेवीनें भी शपथ की, कि यदि मैं इनको वश न करसकूँ तो तेरी दासी हुई । यह नियम करके अपने वस्त्र भूषणादि उतार ऊर्ध्वपुंड्र धारणकर गलेमें तुलसीमाला पहिर भगवन्नाम स्मरण करती हुई देवदेवी मुनीश्वरके पादोंपर जा गिरी और निजरक्षार्थ अनेक दीन वचन निवेदन किया । इसे दुःखिता देख मुनीश्वरने कृपाकर वहां रहनेको एक कुटी बतादी, और तुलसीवनकी कुछ सेवा भी बतादी ।

देवदेवीने एक वर्षभर मुनीश्वरकी आज्ञानुसार सेवा की, किंतु अभीष्टप्राप्तिको कोई अवसर न पाया, इससे उदासीन होय अपने घरको लौटना चाहतीथी कि, भगवान्ने स्वप्नमें कहा कि, तेरी प्रतिज्ञा सफल होगी । यह

दृष्टांत पाय प्रातः उठकर अपने छिपाये हुये वस्त्र भूषण पहिर कर एक अश्वत्थके नीचे खडी हुई, इतनेमेंही महामेघ मंडलसे आकाश आच्छादित होगया। मानो देवदेवीको विद्युल्लता जान मेघ खोजनेके लिये अथवा उठानेके लिये आयेथे। और घोर वर्षा होने लगी, चारों ओर अंधकार छागया। उस समय मुनीश्वर अपने द्वारपर जो निकले तो देवदेवीको भीगते देख अपनी कुटीमें ले आये। देवदेवीने इस समयको पाय पाद सेवाके लिये प्रार्थना की, नितांत मुनीश्वरका चित्त चलायमान होकर उससे रमण करने लगा। उचित कहाहै किसीने कि, सांपको दूध पिलाना अच्छा नहीं होता। तब तो देवदेवीने मुनीश्वरको निजघरमें लाकर अपनी भगिनीको सब वृत्तांत सुनाय अपनी दासी बनाया॥

देवदेवीकी माताने मुनीश्वरसे कहा कि, हे ब्राह्मण! यातो तू धन दे नहीं तो मेरे घरसे बाहर होजा। ये निर्धन मुनीश्वर जिनने धनका स्वरूपभी न जानाथा फिर कहांसे धन देते। बहुत विनय किया जब कुछ न चली तो रातका समय था घरसे निकल द्वारकी तिवारीमें पड़ गये। तब तो भगवान्‌भी हँस दिये, श्रीलक्ष्मीजीने हासका कारण पूछा तो कहा कि, वही भक्तांघ्रिरेणु आज देवदेवीके द्वारपर पडा रोरहा है इससे हँसाहूं, तुमभी देखलो। हाय कष्टकी वार्ता है कि, यह वृत्तांत कहते भगवान्‌को

लज्जाभी न आई। श्रीलक्ष्मीजीने भगवान्से अत्यंत कष्ट-पूर्वक निवेदन किया कि 'आपको अपने भक्तके साथ ऐसा करना उचित नहीं, आपके भक्त आपकी चरणरूप नौकापर बैठकर तरते हैं उनके साथ ऐसी निष्ठुरता नहीं चाहिये। हे भक्तवत्सल! अपने भक्तकी रक्षा करनी चाहिये' श्रीजी क्यों न ऐसे निवेदन करते पिताकी अपेक्षा माताको वात्सल्य विशेष होता है। परंतु यह पटपड़ा श्रीमहा-रानीकाही किया हुआ है। भगवान्ने उत्तर दिया कि, हे प्रिये! यह मेरी लीलामात्र है, मेरे भक्तको मेरी इस लीलासे पाप स्पर्श नहीं करेगा। और इस दुःखसे इस भक्तको आजही मुक्त करताहूं। यह कह भगवान्ने रूप परिवर्तन करके विभीषणके भेंट किये हुये कनक पात्र विशेषको उठाकर देवदेवीको जादिया और मुनीश्वरको उसके पास बिठाया। आप अपने मंदिरमें चले आये ॥

तदनंदर प्रातःकाल जब मंदिर खुला तो वह कन-कपात्र न मिलनेसे पुजारी लोगोंने राजासे निवेदन किया। राजाने तुरंत खोज कराई तो देवदेवीके घरमें पात्र मिला,

---

१ बलिहारी भगवल्लीलाकी यहभी वही बात है कि, जाट हल जोतकर घर जो आया तो खाटपर बालक पुत्र पडेको देखकर स्नेह आगया एक बडे भारी लठ्ठसे जो हाथमें था बालकके साथ लाड करने लगा नितांत बालक समाप्त होगया और जाटका यह लाडही था। उसी तरह मुनीश्वर अपनी संचित पुंजी खो बैठे, और भगवत्की यह लीलामात्र थी । ठीक कहा है-'लक्ष्मी-वन्तो न पश्यन्ति प्रायेण परवेदनाम्' ॥

राजाने श्रीभक्तांघ्रिरेणुजीपर चोरी ठहरा कर दंड देनेका उद्योग किया । जब दण्ड देनेका समय आया तब तो भगवान्‌के छक्के छूटगये पेटमें पानी होगया, जैसे बच्चेके पीछे गैया दौडती है तद्वत् तुरंत राजाके समीप प्रकट होकर आज्ञादी कि-'यह मेरा भक्त है इसके हेतु यह पात्र देवदेवीको मैंने दिया है इस पात्रके पलटेका और पात्र देकर इसे लेलो और मेरे भक्तकी सदा सेवा करो' यह कह भगवान् श्रीभक्तांघ्रि-रेणुजीके हृदय कमलमें जा विराजे तब तो वह ज्ञान-सूर्य जो अस्त होगया था पुनः उदित होगया, मुनीश्वर फिर पूर्वावस्थाको प्राप्त हुये ॥

राजाने भगवदाज्ञा पाकर स्वामीको पालकीमें बिठाय अपने घर लाकर सबविध स्वामीका पूजन किया। स्वामीनेभी मंदिरमें पधार श्रीरंगनाथको साष्टांगकर करजोर क्षमा मांगी और स्तुति की। स्वामी भोले भाले क्या जानतेथे कि यह कौतुक इसी कौतुकीका है। भगवान्‌ने कहा इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं। यह सब मेरीही लीला है, जैसे मेरा गोपिका विहरण चरित पापनाशक है इसी तरह तुम्हारेभी इस चरितको जो सुने सुनायेगा उसके पाप नष्ट होंगे; इन भगवद्वाक्योंसे हर्षित होकर योगीश्वरने प्रबोधक और श्रीमाला नामके दो प्रबंध रचकर भगवान्‌के भेंट किये । तदनंतर पूर्व-

वत् मालाकैंकर्यसे कुछ काल बिताकर परमधाममें पधार भगवत्के कण्ठको अलंकृत किया ॥ १ ॥

श्रीविष्णुचित्तस्वामीकी कथा ।

दक्षिण दिशांतर्गत पांड्य देशमें श्रीविल्लिपुर (धन्वी) नामकी एक पुरी थी। जो पुरी बडे ऊंचे परिकोटासे ऐसी शोभा देतीथी मानो सकल पृथ्वी शोभाकी मंजूषा प्रतीत होती थी। नगरीके चारों ओर पक्के मार्ग बनेथे, कहीं कहीं छोटी छोटी वाटिकायें भी लगीथीं, उस पुरीमें सकल शास्त्रके वेत्ता मुनिनाथ नामके एक महात्मा वास करतेथे उनकी धर्मपत्नीने अपने उदरसे कलि ४७ वर्ष क्रोधन संवत्सर ज्येष्ठमासके स्वाती नक्षत्रके दिन गरुडांशपुत्रको प्रकट किया । पिताने इनका विष्णुचित्त नाम नियत किया । इनका द्वितीय नाम श्रीभट्टनाथ भी था ।

ये महानुभाव कुछ कालमें जब भगवत्सेवायोग्य हुये तो इनने भी एक वाटिका लगाई, उसमें तुलसी गुल्म विशेष आरोपित किये, वाटिकामें कहीं मोतिया, कहीं चमेली, कहीं जूही, कहीं चंपा इत्यादि विविध कुसुमोंके भी गुल्म थे । उसी वाटिकाकी सेचनादिसेवा करते और माला बनाकर भगवत्के भेट करते । ये स्वामी सकल वेद और शास्त्रोंको जान उनकी सारभूत भगवत्-

भक्तिमें लीन थे। समग्र विश्वास भगवत् पर ही रखतेथे। शेषशेषिभावको भली भांति जानते थे।

इसी कालके बीच दक्षिणमथुरामें पांड्यदेश नरेशके समीप तीर्थयात्रा करते हुए एक महानुभाव आये। राजाने उनको प्रणामकर आसनपर बिठाय निवेदन किया कि कुछ विशेष होय तो कहिये। महानुभावजीने कहा कि, लोग वर्षाकालके लिये आठमास यत्न करते हैं, रात्रिके लिये दिन भर यत्न करते हैं, वृद्धावस्थाके लिये युवावस्थामें यत्न करते हैं और बुद्धिमान् लोग मुक्तिके लिये यत्न करते हैं। यह कह चुप होगये। राजाने सब प्रकार पूजन कर उनको विदा किया॥

तदनंतर राजाने पुरोहितको बुलाकर परमधामसाधनके लिये अपने मनोरथको निवेदन किया। पुरोहितने भी राजाको इस विषयमें अनुमति दी और कहा कि, आपका यह काल इसी कार्यके साधन योग्य है आप ऐसा करें जो परमधाम प्राप्त हो। राजाने पुरोहितको पूछा कि 'परमेश्वर कौन है? जिसकी आज्ञासे सूर्य चंद्रादि ग्रह मंडल भ्रमण करते हैं, अनेक ब्रह्मांड नष्ट होते हैं अनेक बनते हैं, कभी जीव जन्म लेताहै कभी मरताहै और वह कौन है? जिसकी उपासनासे परमधाम प्राप्त हो'। पुरोहितने यह सुन उत्तर दिया कि, ये सब प्रभाव भगवान् विष्णुकेहीहैं तथापि वेदवेदांतवेत्ता

जनोंको एकत्रित करके उनके साथ विमर्श करो जो परतत्त्व निश्चित हो उसकी उपासना करनी ॥

राजाने एक बड़ाभारी सुवर्णका बोझा अपनी सभामें लटकाकर देशभरमें डिंडिमा करादी कि, जिसके परतत्त्ववर्णनसे यह भार गिरेगा उसेही यह कनकभार मिलेगा । फिर क्याथा जिसतरह गुड़पर मक्खी आतीहै इसतरह पंडितलोग आ आकर वाद विवाद करने लगे किंतु वह कनकभार न गिरा । राजाको तो प्रत्युत और भी संदेह होगया । धन्वीपुरीके वटपत्रशायी भगवान्ने श्रीविष्णुचित्तस्वामीको राजाके समीप जाकर विजय पानेकी आज्ञादी । स्वामीने निवेदन किया कि, मुझे आपकी सेवा छोड़ विवाद करना नहीं भाता और आपकी संनिधिको छोड़ राजसभामें जानाभी मुझे उचित नहीं । भगवान्ने पुनः आज्ञादी कि, तुम चलो मैंभी तुम्हारे साथ चलूंगा । नितांत आल्वार मथुराको पधारे । मार्गमें वेगवतीनदीको तरकर मथुरामें पहुँचे । वहां निःशंक राजसभामें पधारे । राजाने स्वामीको देख दंडवत् कर उच्चासिंहासनपर विराजमानकरके तत्त्वनिर्णयके लिये प्रार्थना की । आल्वारने तुरंत कहा कि, परतत्त्व श्रीनारायण हैं, स्वामीके परतत्त्व वर्णन करतेही वह कनकभार नीचे गिरा और देवतालोगोंने पुष्पवृष्टि की । राजानेभी साष्टांग कर वह कनकभार स्वामीके

भेट किया। तदनंतर स्वामीको गजेंद्रपर विराजमान् करके समग्र नगरमें भ्रमण कराया। भगवान्भी गरुड़पर विराजमानहोय आलवारको देखने आकाश मंडलमें पहुँचे। स्वामीने भगवद्दर्शनकर मनसे प्रणाम किये, और गजेंद्रके दोनों घंटे दोनों हाथोंमें लेकर भगवान्का मंगलाशासन किया, और भगवत्स्तुतिका प्रबंध रचा[1] ॥

तदनंतर श्रीआलवार धन्वीपुरीको पधारे। जब पुरीके बाहर पहुँचे तो सबलोग स्वामीको लेने गये और पुरीमें प्रवेश कराया। स्वामीने भी मंदिरमें पधार श्रीवटपत्र-शायी भगवान्को साष्टांग कर वह धन और हस्ती भेंट किया। आप फिर पूर्ववत् भगवत्सेवामें तत्पर हुये। तदनंतर तुलसीवनसेवामें स्वामीकी विशेष रुचि बढी ॥

गोदादेवीकी कथा ॥

आषाढके पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके दिन स्वामी खोद-नीसे तुलसीवनभूमिको खोदरहे थे, एक स्थानपर जो खोदनी मारी तो एक बड़ा ढेला उठकर नीचेसे परम सुंदरी साक्षात् श्रीभूदेवीका अवतार समग्र शुभलक्षणोंसे

---

१ इस प्रबंधही द्राविडाम्नायके लिये प्रणव है. जैसे वेदके आदि, और अन्तमें प्रवण उच्चारण किया जाताहै वैसेही यह प्रबंधभीद्राविडाम्नायके आरंभ और समाप्तिमें अनुसंधान किया जाता है। इसका नाम "तिरुपल्लाण्डु" अर्थात् भगवत्का मंगलाशासनरूप प्रबंध ॥

लक्षित चंद्रकलासी एक बालिका निकली। आल्वारने उठाकर हृदयसे लगाकर गोदमें रखली। और यह विचार करनेलगे कि, यह कन्या यहां कहांसे आई? इतनेमें आकाशवाणी हुई कि, 'हे मुनीश्वर! जब भगवान्‌ने वराहरूप धारा था तब भूमिदेवीने यह पूछा कि, हे भगवन्! आपको सब पूजनोमेंसे कौनसी पूजा प्रिय है? और नरोंमें कौन नर प्रिय है?भगवान्‌ने उत्तर दिया कि, पूजनोंमें कुसुमपूजन मुझे सबसे प्रिय है, नरोंमें गुणगायक नर प्रिय है।यह सुन भूमिदेवीने निवेदन किया कि, मैं आपकी कुसुमसेवा करूंगी और गुणकीर्तन करूंगी, इसी कारण भूमिदेवी सीता होकर प्रकट हुई, अब इस बालिकाका यत्नपूर्वक पोषण करो'यह सुन मुनीश्वरने बालिकाको गोद उठाय घरमें आकर पोषणार्थ निज भार्याको दे दी। और सब वृत्तांत सुनाया और बालिकाका गोदा यह नाम नियत किया॥

बालिका चंद्रकलाकी तरह कुछ कालमें यौवनारंभको प्राप्त हुई। श्रीकृष्णगुणोंका गान करने लगी। और पिताके साथ नित्यप्रति वाटिकामें जाकर पुष्प उतारकर भगवान्‌को भेंटकरती॥

श्रीआल्वार भगवत्‌के लिये जो मालाबनाकर रखते श्रीगोदाजी उस मालाको पहिरकर दर्पणमें अपनी शोभा देख उतारकर उसी तरह रखदेती। मानो श्रीगोदाजी

अपने रूपको तोलतीथीं कि पुष्पमाला पहिरकरभी मेरा सौंदर्य भगवत्के स्वीकार योग्य है वा नहीं, कहाभी है 'पहिर पटनील तन कनक हारावली हाथ ले आरसी रूपको तोले'। अथवा भगवत्के समीप जो पदार्थ आताथा उसे प्रथम आप स्वीकार करतीथीं मानो वही अभ्यास अभीतक चला जाता है। स्वामीको यह वृत्तांत कुछ मालूम न था इससे उसी गोदोपभुक्त मालाको भगवत्को भेंट करते, भगवान्भी निज प्राणप्यारीकी प्रसादी मालाको अत्यंत प्रीतिपूर्वक स्वीकार करते। एकदिन भगवन्मालाको पहिरकर श्रीगोदाजी जब दर्पणमें निजमुखको निहार रही थीं कि, स्वामीने देखलिया, देखकर कहा कि, बेटी यह माला तो भगवत्के लिये बनाई थी तुम क्यों पहिरी? यह कह और नवीनमाला बनाकर भगवत्को भेंट की, भगवत्को तो प्रियापरिभुक्तमालाका चसका पडगयाथा फिर यह द्वितीय माला क्यों स्वीकृत हो इससे इस मालाको गेरकर स्वामीसे कहा कि–मुनीश्वर! अपनी सुताकी परिभुक्त वही माला लाकर दीजिये,' मुनीश्वरने उस मालाको और श्रीगोदाजीको लाकर भगवान्को भेंट किया। भगवान्ने वह माला पहिरकर कहा कि 'किसी कालमें इस तेरी कन्याका पाणिपीडन मैंहीं करूंगा। जब तक वह काल उपस्थित नहीं होता तबतक

तुम्हारेही घरमें रहेंगी' । यह आज्ञा पाकर स्वामी घरको पधारे और उसी तरह भगवत्सेवा करते रहे ॥

उस दिन तो मानो श्रीगोदाजीकी भगवत्के साथ सगाई होगई । इस कारण श्रीगोदाजीका प्रेम औरभी बढने लगा और निरंतर भगवद्गुणगान और भगवत्सेवा करती थीं ॥

एक दिन श्रीगोदाजीने पिताके समीप जाकर कहा कि, हे तात! भगवदर्चावतारके जो प्रधानस्थान हैं उनको मुझे सुनाओ ? स्वामीने श्रीगोदाजीकी उचित प्रशंसाकी और स्नेहसे भगवद्धाम कहने आरंभ किये। आमोदलोकमें भगवान् प्रद्युम्न निवास करते हैं, सामोद लोकमें अनिरुद्ध निवास करते हैं, सत्यलोकमें भगवान् विष्णु निवास करते हैं, सूर्यमंडलमें भगवान् पद्माक्ष निवास करते हैं, श्वेतद्वीपमें भगवान् हरि विराजमान हैं, दुग्धाब्धिमें भोगींद्रशयन-पर भगवान् शेषशायी सोतेहैं, बदरिकाश्रममें श्रीनारायण विराजते हैं, नैमिषारण्यमें भगवान् हरि हैं, हरिक्षेत्रमें भगवान् शालग्रामकी पूजन होती है, अयोध्यामें श्रीराघवेंद्रका अर्चन होताहै, मथुरामें भगवान् श्रीबालकृष्णशोभायमान हैं, मायापुरीमें भगवान् मधुसूदन विराजमान हैं। काशीमें भोगींद्रशयन, अवंतीमें अवनीनाथ, द्वारकामें यादवेंद्र, नंद ब्रजमें श्रीकृष्ण, श्रीवृंदावनमें नंदसूनु, कालियहृदमें गोविंद, गोवर्द्धनमें गोपवेश, गोमंतपर्वतपर श्रीशौरी,

हरिद्वारमें जगत्पति, प्रयागमें माधव, गयामें गदाधर, गंगासागरमें भगवान् विष्णु, चित्रकूटमें श्रीराघव, नन्दिग्राममें राक्षसघ्न, प्रभासमें विश्वरूप, कूर्मक्षेत्रमें श्रीकूर्म, नीलाद्रिमें पुरुषोत्तम, सिंहाद्रिमें श्रीमहासिंह, तुलसीवनमें गदी, श्वेताचलपर श्रीनृसिंह, परमात्मक्षेत्रमें श्रीसाक्षिनारायण, गोदावरीतटकी धर्मपुरीमें श्रीयोगानंद, कृष्णवेणीके तीर काकुलमें श्रीआंध्रनायक, अहोबलमें हिरण्यांतक, पांडुरंगमें अरविंदाक्ष, वेंकटाद्रिमें श्री श्रीनिवास, आराममें श्रीहरि, यादवाद्रिमें श्रीनारायण, घटिकाद्रिमें श्रीनृसिंह, हस्तिशैलवर कांचीमें भक्तमंदार और श्रीकमललोचन, गृध्रसरपर श्रीविजयराघव, वीक्षारण्यमें हृत्तापनाशनसरपर श्रीवीरराघव, तोताद्रिमें तुंगशयन, गजस्थलमें गजार्तिघ्न, बलिपुरीमें महाबल, भक्तिसारक्षेत्रमें श्रीजगत्पति, गोपपुरीमें गोपति, श्रीमुष्णक्षेत्रमें महावराह, महितक्षेत्रमें श्रीपद्मलोचन, कावेरीमध्यमें श्रीरंग, रामक्षेत्रमें श्रीजानकीरमण, श्रीनिवासस्थलमें पूर्णभगवान्, सुवर्णनगरमें श्रीसुवर्णास्य, व्याघ्रनगरमें महाबाहु, आकाशनगरमें श्रीहरि, उत्पलावर्तमें शौरि, मणिकोटिमें महाप्रभु, कृष्णनगरमें महाकृष्ण, विष्णुपदमें श्रीलक्ष्मीनारायण, श्वेताद्रिमें श्रीशांतमूर्ति, अग्निहोत्रपुरमें सुरप्रिय, भर्गस्थानमें भार्गव, वैकुंठक्षेत्रमें माधव, पुरुषोत्तमक्षेत्रमें भक्तसखा, चक्रती-

र्थमें सुदर्शन, कुंभकोणमें शार्ङ्गपाणि, भूतिकरणमें शार्ङ्गी, कपिक्षेत्रमें गजार्तिघ्न, चित्रकूटमें गोविंद, उत्तमापुरीमें अनुत्तम, श्वेतपर्वतपर श्रीपद्मलोचन, पार्थस्थलमें हृषीकेश, कृष्णकोटमें मधुसूदन, नंदपुरीमें महानंद, वृद्धपुरीमें वृषाश्रय, संग्रमग्राममें श्रीधर, शरणग्राममें शरण्य, धानुष्कक्षेत्रमें श्रीजगदीश्वर, मौद्गरमें कालमेघ, मथुरामें सुंदर, वृषभपर्वतमें परमस्वामी, गुणक्षेत्रमें श्रीनाथ, कुरुकामें रमासखा, गोष्ठीपुरमें गोष्ठीपति, दर्भशयनमें श्रीशयितराघव, धन्वी पुरीमें शौरि, भ्रमरस्थानमें बलाढ्य, कुरंगक्षेत्रमें पूर्णेंदुवदन, एकत्तटीमें विष्णु, क्षुद्रनदीपर अच्युत, अनंतशयनमें पद्मनाभ इन इन स्थानोंमें ये ये भगवत्की मूर्ति विराजमान हैं। मानो आल्वारने इन भगवत्मूर्तियोंका श्रीनाम सुनाकर श्रीगोदाजीका स्वयंवर करदिया ॥

भगवत्के परस्वरूपादिकोंमें अर्चावतार अत्यंत सुलभ हैं, प्रेमसे कीहुई अल्पही सेवासे परमधामकी कृपा करते हैं। जहां जहां भगवन्मूर्ति विराजमान हो उन सब स्थानोंको पुण्यतीर्थ जानना चाहिये । जो देवानांप्रिय आग्रही लोग भगवन्मूर्तियोंमें भेद जानते हैं वे कदापि इस संसारसमुद्रको नहीं तरसकते । श्रीब्रह्माभी भगवन्मूर्तिका पूजन करते हैं, महादेवजी भी भगवदर्चावतारकी सेवाके लिये काशीमें निवास करतेहैं,

और भी समग्र देवर्षिलोग भगवद्विग्रहका पूजनकरतेहैं, इससे हे गोदे ! तूभी भगवन्मूर्तिका पूजन कर ॥

श्रीगोदाजीनेभी पिताके मुखसे समग्र अर्चावतार-स्थल सुनकर श्रीरंगनाथमें अपने चित्तको लगाकर, निरंतर उन्हींके गुणगाने लगीं, उन्हींको स्मरण करतीं। जोभगवान्‌ने आज्ञा दीथी कि, किसीकालमें इसकन्याका मैं ही पाणिग्रहण करूंगा, जैसे वर्षाकालको चातकी निहारा-करती है, जैसे चकोरी पूर्णिमाकी आशा करतीहै तद्वत् उस कालकी प्रतीक्षा करने लगीं । और भगवत् प्रबंध रचकर भगवान्‌को भेंट किये ॥

तब तो भगवान्‌भी बरात सजाकर दुलहाबन गरुडपर बैठ धन्वीपुरीमें आपहुँचे। भगवान्‌को आते देख स्वामीभी नगरवासियोंको साथले नगरसे बाहिर भगवत्‌को लेने गये भगवद्दर्शनकर साष्टांगकी और अपने सौभाग्यको सराहा। स्वामीका सौभाग्य अवश्य प्रशंसनीय है कि, जिनकी कन्या श्रीगोदाजी और जामाता साक्षात् श्रीरंगनाथ ॥

---

१ उसी तरह हमाराभी दौर्भाग्य प्रशंसनीय है भाग्य दुष्ट होतो ऐसाही हो जो श्रीरंगनाथकी मूर्तिके भी दर्शन प्राप्य नहीं हैं यदि वैसे किसी समयमें कीट पतंगभी होते तो संभव था कि, आज मदांधोंके मुख न देखने पडते और परमधाममें चैन करते किंतु जिधरको राजाकी सवारी जाती है उस कालमें उस ओरका मार्गभी बडभागीजनोंको मिलता है हमारेसे क्षुद्र तो दूरहीसे रोंक दिये जाते हैं नरकमें सडतों सडतोंको इस भूपर आनेको वह अवसर मिला जब किसी महानुभावका नामभी कर्णगोचर न होय, यह सर्वथा भगवद-नवलोकितासे सदा नरक वासका कारण है अस्तु भगवत्‌के मनोरथ पूरे हों हम नरकमेंही सड सड कर काल वितावेंगे, कहाभी है हाफिजाचार्यने–

तदनंतर स्वामी भगवत्को घर लेगये वहां सिंहासनपर विराजमान करके भगवत्का पूजन किया । और अग्निप्रज्वालनकर अनमोल भूषण वस्त्रोंसे श्रीगोदाजीको अलंकृत कर अग्निके संमुख भगवत्को भेंटकिया । भगवत्भी श्रीगोदाजीका पाणिग्रहणकर विवाह विधिको पूर्णकर अपने श्रीरंगधामको पधारे ॥

तदनंतर श्रीविष्णुचित्तस्वामीभी कुछ काल पूर्ववत् भगवत्सेवा करके परमधामको पधारे । इनके परमधाम पधारनेमें कौन संदेह ? सदाही श्वशुरोंका बडा आदर होताहै ॥ १० ॥

श्रीपरकालस्वामीकी कथा ।

चोलदेशमें एक कलापूर्णपट्टन नामका नगरथा । यह नगर वास्तवमें कलापूर्णहीथा । चोलदेशनरेश भी इसी नगरमेंही निवास करतेथे ॥

इसी नगरमें कार्तिकमासके कृत्तिकानक्षत्रके दिन सेनापतिके घर भगवत्के शार्ङ्गधनुषने बालरूपसे अव-

---

–" तरके कामे खुद गिरफतम् तावरायद कामे दोस्त " अर्थात् मैं अपने मनोरथका त्याग करताहूं जो कि मेरे प्यारेका मनोरथ पूरा हो ॥

१–यह ही कृतयुगमें कर्दमप्रजापतिकरके ब्राह्मण, त्रेतायुगमें उपरिचरवसु राजा द्वापरमें शंखपाल नामक वैश्य हो इस कलियुगमें पतितोंको पावन करनेके लिये शूद्र कुलमें जन्म लिया है. ऐसा शास्त्रप्रसिद्ध है.

तार लिये। यह बालक श्यामवर्ण रहनेसे पिताने इस बालकको 'नीलन्' यह नाम नियत किया। यह तो भगवत्कृपासे थोडी अवस्थामें ही धनुर्विद्यामें पारंगत हो चोलराजाके शत्रुओंसे युद्ध कर विजय पानेके कारण राजाने इनको 'परकालन्' नाम नियत कर राज्यप्रबन्धविचारादि इनके आधीनकरदिया। ये बालक चंद्रमाके सदृश शीघ्रही प्रौढ होगये। इनने समग्र नीतिशास्त्र पढे और वेदांत सांख्य योगादिको भले प्रकार जान लिये। शस्त्रविद्याका तो क्याही कहा जाय क्योंकि ये स्वयं भगवत्के शस्त्र विशेषका अवतार हैं॥

चोल देश नरेशके ये प्रधान सेनापति थे इस कारण समग्र राज्य भार इन्हीं पर था। इनने भी निज बुद्धिवैभवसे राज्य प्रबंध अत्यंत सुंदर कर लिया था॥

इसी कालके बीच नांगरपुरीमें एक अनपत्य वैष्णव निवास करते थे। एक दिन उनने एक सरोवरमें एक बालिकाको देखा, उस बालिकापर किसीका भी स्वत्व न पाकर बालिकाको उठालिया। और अपने घर लाकर पालनके लिये निजभार्याको बालिका दे दी।

१–इस बालिकाका वृत्तान्त यह है कि,देवलोकसे अप्सरा लोक जब क्रीडार्थ उस नगरके तटाकमें आ क्रीडा करतीथीं, उनमें एक अप्सरा कुमुदपुष्पको तोड रहगयी। इससे इसका नाम "कुमुदवल्ली" है।

यह बाला चंद्रकलावत् कुछ कालमें यौवनको प्राप्त होगई । और रूपलावण्यमें अत्यंत प्रधान थी, गुणोंकी तो मानो मूर्तिही थी । इसहेतु इसकी प्रशंसा सुन श्रीपरकालस्वामीने सब राजकाम छोड नांगरपुरीमें पहुँच बालिकाके लिये उसके पितासे याचना की । पितानेभी कन्या देनेकी जब तैयार हुये तब कन्याने बोली कि-" मैं चक्राङ्कित श्रीवैष्णवविना दूसरेको नहीं वरूंगी " इस अभिप्रायको सुन परकाल,सारक्षेत्राधिपति सारनाथसे प्रार्थना कर शंखचक्रांकित हो द्वादशोर्ध्वपुण्ड्रलक्षणसे फिर कन्याके पास आकर विवाहके लिये पूछनेपर पुनः कहने लगी कि-" आप एक वर्षतक नित्यप्रति १००८ श्रीवैष्णवोंको भोजनकराकर उनके चरणोदक लेनेका स्वीकारकरें" तो आपकी पत्नी होऊँगी, परकाल भी इसको सुनकर प्रेमवशसे प्रतिज्ञाको स्वीकारकर उस कन्याके साथ विवाह करलिया ।

वहांसे स्वपुरीमें आकर राजधनसे नित्यप्रति एक सहस्र हरिजनोंको भोजन देने लगे । भोजन कुछ यथा तथा न देतेथे किंतु विविध प्रकारके खाद्य पदार्थ बनवाकर यथेच्छ भोजन कराकर पीछेसे आपभी प्रसाद लेते थे । उसपरभी भागवतोंके समीप अत्यंत नम्र रहते थे, अन्नप्रदानका अभिमान नाममात्रभी न था । और

" श्रीशोऽस्य जगतो राजा वैष्णवास्तस्य नन्दनाः ।

पित्र्यं वस्तु सुता लोके भुञ्जन्त इति संस्मरन् ॥"
इस पद्यका अनुभव किया करते ॥

श्री परकालाल्वारके इस भगवदाराधन व्ययको सुन रुष्ट होकर चोलाधीशने स्वामीको बुलानेके लिये दूत भेजाथा। परकालने दूतोंके निवेदनपर कुछ ध्यान न दिया इससे दूतोंने लौटकर वह सब वृत्तांत राजासे कहा। राजाने क्रुद्ध होकर सेनासहित परकाल पुरीको प्रस्थान किया और पहुँच कर चारोंओरसे पुरीको रोक लिया। यह वृत्तांत सुन स्वामी भी अपनी सेनासहित बाहर आये। आतेही धनुषावतारकी सेनाने ऐसा पराक्रम दिखाया कि, राजाकी समग्रसेना नष्ट भ्रष्ट होगई। किन्तु एकला राजा श्रीपरकालके साथ द्वंद्व युद्ध करने लगा नितांत इस द्वंद्व युद्धमें भी राजा पराजित होकर दूर हटगया। क्यों न हो श्रीआल्वारका नाम ही परकाल है फिर राजाने स्वामीको विनतीसे कहा कि, हे परकाल! धर्मसे जितना तुमको मेरा द्रव्य देना है उतना दे दो। तबतो स्वामी धर्मपा-शमें बँध गये, तुरंत यह कहा कि, यह जितना धन है सब तुम्हारा है, और जो मैंने व्यय किया है वह भी धन तुम्हारा था। राजाने कहा कि, यदि धर्मसे मेरा है तो मुझे दो, यह सुन स्वामीने वह सब धन राजाको दे दिया। राजाने फिर कहा कि, जो तुमने व्यय किया है यदि वह भी धन धर्मसे मेरा था सो मुझे मिलना

चाहिये । यह राजाके वचन सुन आल्वारको बड़ी चिन्ता हुई कि, अब व्यय हुआ धन कहांसे लाकर दूं । इसी कालमें भगवत्‌ने स्वप्नमें आज्ञा दी कि-'हे परकाल! तुम कांचीमें आवो मैं तुम्हें धन दूंगा' यह आज्ञा पाकर राजाके अमात्यको साथले कांचीमें पहुँचे।वहां अर्थितार्थपरिदान-दीक्षित वरदराज भगवान्‌को साष्टांगकर भगवत्‌की स्तुति की । भगवानने मत्यरूपधारकर आल्वारको धन दिया । स्वामीने राजाके अमात्यको वह धन देकर राज-ऋण चुकता कर दिया ।

तदनंतर श्रीपरकालाल्वारने अपनी भार्यासे कहा कि, ' प्रिये ! यह राजा बडा दुष्टहै और वैष्णवाराधनभी प्रति-ज्ञात होनेसे अवश्य कर्तव्यहै, राजधनकी अपेक्षा यदि चौर्यधनसे वैष्णवाराधन किया जाय तो अच्छा हो,सिवाय चोरीके और कोई धनोपार्जनका उपाय प्रतीत नहीं होता, और चोरी मैंने अपने शारीरिक सुखके लिये नहीं करनी हरिभक्तोंके लिये की, चोरीका पाप मुझे स्पर्श नहीं क-रेगा' । विवश होय भार्याने भी इसमतिको स्वीकार किया । तबतो आल्वारने अनेक खड्गादि शस्त्र लिये और अपने अन्तरङ्ग चार[१] वीरोंको साथ ले चोरी-

---

१ चार वीर ये हैं कि-

तालूदुवान्-फूंकमारनेसेही ताला तोडनेवाला,

नीरमेल् नडप्पान्-(जल) पानीमें चलनेवाला,

निळ्लिल मरैवान्-छायामें छिपनेवाला,

तोरावळक्कन्-वितंडावादमें कभीभी न हारनेवाला ये नाम द्राविडभाषाकेहैं ।

करना आरंभ किया। रात्रिके समय मार्गमें जाबैठते, जो कोई अवैष्णवजन जाते मिलते उनका धन खोस लेते। किन्तु वैष्णवधनका हरण नहीं करतेथे। इसी भांति चौर्य-धनसे नित्यप्रति सहस्रावधि वैष्णवोंकी सेवा करते रहे॥

एकसमय स्वामी धनहरणकी इच्छासे नगरमें गये, रात्रिके समय अजानसे एकवैष्णवके द्वारपर खडे रहे, इतनेमें गृहिणी दुग्धलेनेके लिये एकस्वर्णपात्रको लेकर निकली, उस पात्रको स्वामीने खोस लिया, गृहिणीने हाथसे पात्रको छोड 'गुरुभ्योनमः' ऐसा वाक्य कहकर गृहमें प्रवेश किया। इस वाक्यको सुन स्वामीने अनुमान किया कि, यह वैष्णवोंका घरहै इसहेतु पीछेसे जाकर वह पात्र उन्हींके घर गेर कर स्वामी वहां ही खडे रहे। गृहिणीने पात्र खोसनेका वृत्तांत पतिसे कहा, पतिने कहा कि, भद्रे! श्रीपरकाल वैष्णवाराधनके लिये चोरी करतेहैं यह पात्र उन्होंने खोसा होगा इससे आज हमारे बड़े ही भाग्य है जो हमारा भी पदार्थ स्वामीने अपना जान खोसा। इतने कालमें एक वधू बाहर आई तो पौरीमें पात्र पडेको उठाकर गृहपतिसे निवेदन किया। पात्रको गेरदेनेसे गृहपति अत्यंत दुःखित हुये और अपनी भार्यासे पूछा कि, तुमने उस समय क्या कहाथा? भार्याने उत्तर दिया कि, और तो कुछ नहीं कहा केवल 'गुरुभ्यो नमः' ऐसा कहाथा, गृहपतिजीने कहा पापे! उस समय

यह वाक्य क्यों कहाथा, तुम्हारे इस वाक्य से स्वामी अपनेको वैष्णव जान पात्रको पटकगये। और समग्र अपराधोंको भगवत् क्षमा करतेहैं परंतु भागवतापराधको भगवान् क्षमा नहीं करते । गृहपतिके इस पत्नीभर्त्सनको सुन श्रीआल्वार उस घरमें चले गये। गृहपतिको प्रणाम कर कहा कि, हे वैष्णवशिरोमणे! मुझसे अज्ञातमें यह अपराध हुआ जो इस महानुभावा माताके हाथसे पात्र खोसा । आशाहै कि, मेरे इस अपराधको आप क्षमा करेंगे। इन वाक्योंसे गृहपतिने स्वामीको श्रीपरकालजान दंडवत् की और बड़ी स्तुति की। आल्वार वैष्णवदंपतीसे आज्ञालेकर अपने घरको आये। और नित्यप्रति प्रतिज्ञात वैष्णवाराधन करते रहे ॥

इसीतरह पथिक धन चोरी जानेसे पथिकजनोंने उस मार्गको छोड़ दिया इस कारण एकबेर आल्वारको कुछ न मिला, इस हेतु वैष्णवाराधन न होसकनेसे आपभी कुछ अन्न न लिया। निजभक्तके इस दुःखको दूरकरनेके हेतु भगवत्ने एक बरात सजाई, आप दुलहा बने श्री-

१ पाठकवर! ऐसे लोग भगवतके दरबारमें वैष्णव गिने जाते हैं ना कि हमारेसे आत्माभिमानी मूंड मूँडाऊमात्र। यदि कोई और होता तो पत्नीकी प्रशंसा करता और पात्रगेर देनेसे संतुष्ट होता क्योंकि वास्तवमें उनकी पत्नीका कुछ दोष नथा उसने पात्र लौट आनेके लिये गुरुभ्यो नमः नहीं कहा किंतु स्वाभाविक वैष्णवताके कारणसे कहाथा। क्यों नहो भगवद्भक्तोंके चरित भगवद्भक्तोंमें ही होते हैं ॥

लक्ष्मीजीको दुलहन बनाया बड़ेबड़े पात्र छत्र चामरादि साथ लिये और बहुमूल्य अनेक भूषण पहिरे। भूषण वस्त्रादियोंको चमकाते हुये देव देवर्षिगण सहित दुलहा श्रीपरकालके गृहसमीप आपहुँचे। दूरसे घोड़ेपर दुलहा दुलहनको और बरातकी सजावटको देख आल्वारने भी निज भटों सहित कमर बांधी। जोंही बरात समीप आई कि, डांका मार समग्र भूषण वस्त्रादि धन खोस लिया। भगवत्की अँगुलीमें एक अंगूठी थी उसको देख आल्वारने 'यह अँगूठीतो हरिभक्तोंके योग्य है' यह शोच, भगवत्के नाहीं करते भी करसे बलात् अँगुलीसे अँगूठीको उतार लिया। भक्तवत्सलभी इसका शौर्य धैर्य पराक्रमसे संतुष्ट हो इसको 'कलियन्' नामसे पुकार आलिंगन किये। भगवत्के भक्तो बहुत हुये परंतु ऐसा भक्त कोई नहीं हुआ जो भगवत्के साथ भी जबरदस्ती करे और पितापर पुत्र जितनीही जबरदस्ती करे वह कमतीही होती है। इस समग्र धनको एक स्थानको इकाट्ठा किया। धनको बहुत कालके लिये पर्याप्त देख, संतुष्ट मनसे जब उठानेलगे तो किसी प्रकार न उठा। भगवत्के पुरोहित श्रीब्रह्माजी थे आल्वारने जाना कि, इस वृद्ध पुरोहितने मंत्रसे धनको कील दिया है इससे ब्रह्माजीको कहा कि 'हे ब्राह्मण! अपने मंत्रको उठाले नहीं तो अभी तेरा शिर काटताहूं' ब्रह्माजीने कहा मैं कुछ नहीं जानता

यह सब प्रभाव इस वरका है, भगवत्ने भी तुरंत कह दिया कि 'धनको मैंने कीला है मेरे समीप आओ मैं एक मंत्र देताहूं तब धन तुमसे उठेगा' । यह सुन स्वामी भगवत्के समीप गये भगवत्ने मस्तकपर करकमल रखकर दाक्षिण श्रोत्रमें सकलवेदार्थ सारभूत श्रीअष्टाक्षरका उपदेश कर अपने दिव्य चतुर्भुज रूपका दर्शन कराया। तबतो स्वामीने साष्टांग कर भगवद्दर्शन और मंत्रोपदेशसे अज्ञानान्धकारको नाशकर तत्त्वत्रय संपन्न हो आशु, मधुर, चित्र, विस्तारभेदयुक्त चतुर्विध कविसे स्तुति की और प्रबंध रचकर भगवत्को भेट किये । भगवत्ने भी प्रेमसे आल्वारका आलिंगनकर निज धामको प्रस्थान किया । क्यों न भगवत् आलिंगन करते जो अपने पुत्रोंका तनमनधनसे परिपालन करे उससे बढकर कौन प्यारा होसकता है । स्वामी भी उसीतरह वैष्णवाराधन करतेरहे ॥

तदनंतर श्रीपरकालाल्वार कुछकाल श्रीरंगमें निवास

---

१ चित्, अचित्, ईश्वर. २ इनसे रचे हुए प्रबंध ये हैं–

१ पेरियतिरुमोळि.	४ तिरुवेलुक्कूत्तिरुक्कै.
२ तिरुकुरुन्दाण्डकम्.	५ शिरियतिरुमडल्.
३ तिरुनेडुन्दाण्डकम्.	६ पेरियतिरुमडल्.

ये प्रबंध छः भी–श्री शठकोपस्वामीका किया हुआ चार वेदोंका छः अङ्ग हैं । जैसे वेदोंको शिक्षा आदि छः अङ्ग हैं वैसे द्राविडाम्नायोंका येही उपरोक्त छः अङ्ग हैं.

करते रहे। फिर श्रीरंगनाथसे आज्ञा लेकर श्रीवेंकटाद्रिको पधारे। मार्गमें जब कांची पहुँचे तो पास कुछ न होनेसे ये स्वमंडल सहित क्षुधार्त थे इस वार्ताको जान कांचीपुराधीश अष्टभुज श्रीनृसिंहने ब्राह्मणरूप धार आल्वारको मंडल सहित भोजन दिया। स्वामीने निजवैष्णव तृप्तिके अनंतर स्वयं भोजन कर कपट ब्राह्मणसे पूछा कि, आपका नाम क्या है? भगवत्ने कहा कि, मैं कांचीपुराधीश अष्टभुज नृसिंह हूं; यह कह भगवत् अंतर्हित होगये। स्वामीने भगवत्के इस विचित्रचरित्रसे विस्मित होकर तीन दिन वहां ही वास किया॥

श्रीवेंकटेशजीने भी निजभक्तको देखनेकी लालसासे वहां ही आकर दर्शन दिये और आल्वारको कंठसे लगा लिया। आल्वारने भी साष्टांग कर स्तुति की, भगवदाज्ञाको पाकर पुनःश्रीरंगको प्रस्थान किया॥

श्रीरंगमें आकार श्रीरंगनाथके सप्तप्राकारके मंदिर बनानेका विचारकर स्तेयधनसे मंदिर बनवाना आरंभ किया। इतने कालमें पास जो धन था उसका व्यय होजानेसे धनकी चिंता पडी। किसीसे सुना कि,नागपुरमें एक स्वर्णकी जैनमूर्ति है इससे स्वभटोंसहित स्वामी नागपुरमें पधारे वहां बहुतसे उपायकर बडी क्लिष्टतासे उस मू-

र्तिको चुराकर श्रीरंगमें आकार मंदिरको समाप्त कराया। और बत्तीस मंडप शिल्पीजनोंसे करजपर बनवालिये जब शिल्पी लोग मूल्य मांगने लगे तो स्वामीनेशोचा कि, 'इनने बहुत भगवत्सेवा की है इससे इनको अमूल्य मुक्ति-धन प्राप्त होना चाहिये ' यह विचार धनप्रदानव्याजसे शिल्पिजनोंको नावपर बिठाय कावेरीके बीच पहुँच नाव डुबादी और उनको मुक्तिप्रदानके लिये करजोर श्रीरंगनाथसे प्रार्थना की. भगवत्ने तुरंत सबको निजपर-मधाममें पहुँचादिया। मानो शिल्पीजनोंको श्रीवैकुंठके मंडपोंकी शिल्पता दिखानेको वहां भेजदिया। आल्वा-रके समय क्याही मुक्ति सस्ती बिकतीथी मकान बना देनेके पलटे मुक्ति बिकगई ॥

तदनंतर जैनलोगोंने खोज करते करते स्वामीको चोर जान पांड्यदेश नरेशके समीप जा पुकार की, राजाने स्वामीको बुलाया, जब जैन लोग स्वामीके सन्मुख

---

१ पाठक महाशय इनकी चोरीको पाप दृष्टिसे न देखना। ये श्रीआल्वार कुछ स्वशरीरयात्रानिमित्त चोरी नहीं करतेथे किंतु भगवद्भागवतसेवारूप यज्ञके लिये चोरी करतेथे इससे इस चोरीकोभी धर्मसेभी अधिक कहना चाहिये ।। क्योंकि गीताके३अध्याय९श्लोकमें भगवत्ने ' यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ' ऐसे कहा है। इसी श्लोकपर श्रीरामानु-जस्वामीने गीताभाष्यमें 'यज्ञादिशास्त्रार्थकर्मशेषभूताद्द्रव्यार्जनादेः' कर्मणोऽ-न्यत्रात्मीयप्रयोजनशेषभूते कर्मणि क्रियमाणेऽयं लोकः कर्मबन्धनो भवति' ऐसा लिखा है ॥

आये तो स्वामीने उन्हें पराजित करदिया । इस कारण राजानेभी स्वामीकी बहुत सेवा की और हस्तीपर बिठा श्रीरंगको भेजे । मार्गमें कार्तिकेयावतार एक शैवगुरु था उसको जीतकर श्रीरंगमें पहुँचे । तदनंतर आल्वारने श्रीरंगनाथकी आज्ञासे सर्वस्व त्यागकर निजभार्यासहित भद्राश्रममें निवास किया । कुछ कालमें भगवद्ध्यानामृत पान करते करते इस भूमंडलको छोड श्रीवैकुण्ठमें पहुँच भगवत्के श्रीहस्तको अलंकृत किया ॥ ११ ॥

श्रीरामानुजस्वामीकी कथा।

श्रीमते रामानुजाय नमः।

द्रविड़देशमें वन उपवन तड़ाग वापिकाओंसे सुहावनी, अनेक भगवद्भक्तोंके निवाससे पवित्र, जिसके घर घरमें भगवन्नाम सुनाई दे, जिसकी पाठशालाओंमें

वेदध्वनि होती थी, उस भूतपुरीमें महासूर्यवंशके केशव नामके महानुभाव ब्राह्मणकी धर्मपत्नीके उदरसे चैत्रके आर्द्रा नक्षत्रके दिन भगवत्के शेषजीका अवतार प्रकट हुआ। श्रीकेशवजीने इनका रामानुज नाम नियत किया॥

ये बालचन्द्रमाके सदृश कुछ कालमें उपनयनावस्थाको प्राप्त हुये। पिताने इनका उपनयन करके पंचसंस्कार कराया, और शास्त्राध्ययनका आरंभ कराया। इननेभी अल्पही कालमें बहुतसे वेदशास्त्र जान लिये। प्रथम तो ऐसा वेद शास्त्रही कौनसा है जो इनसे छिपाथा फिर यदि नवीन भी कुछ स्मरण करना पड़े तो जितने कालमें और कोई एक श्लोक स्मरण करे उतने कालमें ये सहस्र मुखसे सहस्र श्लोक स्मरण करसकते थे। फिर क्यों न अल्पही कालमें सकल वेद शास्त्र जानलेते। इतनेभी ये युवावस्थाको प्राप्त हुये इसहेतु पिताने इनका विवाह कर दिया॥

कुछ कालके अनंतर आप कांचीपुरीको पधारे वहां पहुँच श्रीवरदराजको साष्टांग कर कर जोर स्तुति की,

---

१--पाठकलोग इनका संपूर्ण वृत्तान्त प्रपन्नामृतनामक संस्कृत ग्रंथ और रामानुजवैभव ग्रंथ रामानुजचरितमें भी इनका वृत्तान्त और दिग्विजय तथा शंकर, भास्कर, यादव, भाट्ट, प्रभाकर आदि मतखंडन: प्रभृति संपूर्ण विषय पढकर इनका महत्त्व समझलें यह तो संग्रह है.

और कुछ काल वहांही निवास कर यादव नामक पंडितसे वेदांत शास्त्रका अध्ययन करने लगे ॥

इसी काल चोलदेशनरेशकी कन्यामें ब्रह्मराक्षस आताथा, उसके निवारणार्थ नरपतिने यादवको बुलाया, यादवभी अपने समग्र शिष्योंके साथ गया इस कारण स्वामी भी साथ थे। वहां जाकर यादवने बहुत उपाय किये किंतु कुछ सफलता न पाई। प्रत्युत ब्रह्मराक्षसने यादवसे कहा 'हे यादव! तू क्यों यहां आया है? मैं तेरे निकाले नहीं निकल सकता।भला यह तो कह कि, तैंने पूर्वजन्ममें इस ब्राह्मणतनु प्राप्तिका हेतु कौन कर्म किया है और मैंने इस ब्रह्मराक्षसतनुप्राप्तिका हेतु क्या कर्म किया है? यादव तपस्वी तो केवल वाद विवाद मात्र जानता था वह इन बातोंको क्या जानता, इस कारण ब्रह्मराक्षसका वचन सुन चुप होगया। तबतो ब्रह्मराक्षसने कहा 'मैं तेरे पूर्वजन्मचरितको सुनाताहूं कान देकर सुनना' यह कह यादवका पूर्वजन्मचरित सुनाना आरंभ किया। हे यादव! पूर्वजन्ममें तू गोपाल गोरक्षक अहीर था। श्रीवेंकटाद्रिको जातहुये हरिभक्तोंके उच्छिष्ट भोजनके प्रभावसे ब्राह्मण कुलमें जन्मा है। अब मैं अपनी कथा सुनाताहूं मैं पूर्वजन्ममें ब्राह्मण था एकवेर घोर वनमें जाकर मैंने सिद्धिके लिये एक मंत्रका जप प्रारंभ किया दैववशसे उस मंत्रका लोप होजानेसे मैं

ब्रह्मराक्षस होगयाहूं । पूर्वजन्मके अहीरोंसे मैं नही निकल सकता किंतु ये श्रीरामानुजस्वामी मुझे आज्ञा दें तो मैं इस जन्मको त्याग परमधामको चला जाऊं" । यह कह ब्रह्मराक्षस स्वामीके चरणोंपर गिरपडा । यादवने उसकी निवृत्तिके लिये आल्वारसे कहा, श्रीआल्वारने 'गच्छ' ऐसा कह दिया, स्वामीने आज्ञा देतेही राजकन्याको छोड सबलोगोंके देखते २ ब्रह्मराक्षस विमानपर बैठ परमधामको चला गया । तदनंतर राजाने यादव सहित स्वामीकी बहुत कुछ सेवा की, राजासे विदा होय पुनः यादव सहित श्रीआल्वारमुकुट कांचीमें पधारे । यादव वैष्णवमतका बडा विरोधी था वेदके अर्थोंको कुछका कुछ कर सुनाता था इससे शेषावतारने यादवसे पढना छोड श्रीवरदराजकी सेवा करते हुये कांचीमें ही निवास किया । और कुछ कालके अनंतर स्वामीने श्रीमहापूर्णस्वामिका आश्रय लिया ॥

कावेरीतटपर नारायणग्राममें ईश्वरार्य नामके एक परम वैष्णव थे उनके नाथमुनि नामके पुत्र हुये ।श्रीनाथमुनीजीके ईश्वरमुनी नामके पुत्र हुये, श्रीनाथमुनिजी अपने इस भगवद्भक्त पुत्रके सहित भगवद्धामोंकी यात्राकर कुछ काल गोवर्द्धनपर रहे, वहांसे श्रीशठकोपाल्वारके चरणोंमे पहुँचे उनसे उनके प्रबंध पढे और न्यासयोगका उपदेश ग्रहण किया । तदनंतर जयत्सेनावतार

पुण्डरीकाक्षको और कुरुकाधीशको बुलाकर अपने ईश्वरमुनि पुत्रसे कहा—हे पुत्र ! तुम्हारे घर भगवत् सिंहासनका अवतार होगा उसका यामुन यह नाम रखना । पुंडरीकाक्षजीसे कहा 'हे पुंडरीकाक्ष ! तुमने मेरे पौत्र यामुनको श्रीआल्वारके ये प्रबंध पढाने'। कुरुकाधीशसे कहा 'हे कुरुकेश ! तुमने मेरे पौत्रको योगशिक्षा देनी'। यह सब प्रबंधकर सातसौ वर्षके अनंतर श्रीनाथमुनिस्वामी भगवद्धामको पधारे ॥ पुंडरीकाक्षजीने अपने शिष्य कुमुदावतार राममिश्रजीको प्रबंध पढाकर आज्ञा दी कि, ईश्वरमुनिके जो पुत्र होगा उसको इन सब प्रबंधोंका उपदेश करना, यह कह पुंडरीकाक्षजी भी परमधामको चले गये ॥

तदनंतर श्रीयामुनमुनिने जन्म लिया, इनको श्रीराममिश्राचार्यने न्यास योगका और आल्वारप्रबंधार्थका उपदेश किया। श्रीयामुनमुनिके पांच शिष्य थे। १ कुमुदाक्षावतार महापूर्णस्वामी, २ सुमुखावतार श्रीशैलपूर्णस्वामी, ३ शंकुकर्णावतार कांचिपूर्णस्वामी, ४ पुंडरीकाक्षजीके पुत्र गोष्ठीपूर्णस्वामी, ५ श्रीमाल्यधर स्वामी,

१ यह निश्चय नहीं कि, श्रीनाथमुनिजी यह पौत्र विषयक प्रबंध करनेके अनंतर कितने काल इस भूलोकपर रहे किंतु यह सुना जाताहै कि, आपकी आयु सातसौ वर्षकी हुई । यहभी सुनाजाताहै कि, जो इससमय श्रीगोकुल संप्रदायमें श्रीनाथजीहैं इनकी गोवर्द्धनपर श्रीनाथमुनिजी पूजन करतेथे । आश्चर्यभी क्या है वे श्रीनाथजी ये श्रीनाथमुनिजी नामभी समानही हैं ।

ये पांचों महानुभाव भगवच्चरण कमलके मधुप थे, भक्तिके तो सागर ही थे और सकल शास्त्रोंके वेत्ता थे । इनमेंसे श्रीमहापूर्णस्वामीके विना और चारों आचार्य भगवत्के पुण्यक्षेत्रोंमें भ्रमण करते थे । श्रीमहापूर्णस्वामी तो सदा श्रीयामुनमुनिके चरणोंमें ही निवास करते थे । श्रीयामुनमुनिने महापूर्णजीको अपने समग्र रहस्यका उपदेश करदिया था ॥

श्रीयामुनमुनीश्वरने प्रतिवादियोंको जीतकर वैष्णवधर्मको उज्ज्वल कर महापूर्णस्वामी सहित श्रीरंगक्षेत्रमें आकर निवास किया, और कुछ कालमें श्रीवैकुंठको प्रस्थान कर दिया ॥

श्रीदेवराज भगवान्की आज्ञासे लक्ष्मणमुनि (श्रीरामानुजस्वामी) के सहित श्रीकांचीपूर्णस्वामी श्रीमहापूर्णस्वामीके समीप आकर निवास करने लगे । श्रीमहापूर्ण स्वामीने श्रीरामानुजस्वामीको समग्र रहस्योंका उपदेश किया।

तदनंतर दाशरथिजी और श्रीवत्सचिह्नमिश्रजी

१ वैष्णव संप्रदायमें वह भी एक समय था जिस समयमें श्रीशेषावतारभी उपदेश लेते थे और अनेक महानुभावोंसे रहस्यका संग्रह करते थे । आजभी एक समय है कि, जिसने शंखचक्र लगवाये वह अपने आपको विनाही उपदेशके पंडितवर सकल शास्त्रवेत्ता वैकुंठका अफसर सब सिद्धोंका शिरोमणि समझ गर्दनियांमें कीला अड़ालेता है । क्योंकि कहीं गरदन झुक जाय तो गजब आजाय । यह सब भगवल्लीला है ।

श्रीरामानुजाल्वारके शिष्य हुये और आल्वारकी ही सेवा करते रहे ॥

पूर्वोक्त यादव नामके यतीको उसकी माताने कहा कि, " हे यादव ! शिखा और यज्ञोपवीत त्यागने श्रेष्ठ नहीं, जैसे श्रीरामानुजाचार्य शिखा और यज्ञोपवीत संन्यासावस्थामें भी रखते हैं वैसेही संन्यासावस्थामें तुमको भी शिखा यज्ञोपवीत रखने चाहिये "। माताका यह वचन सुन यादवने शिखा यज्ञोपवीतके पुनः धारणका विचार किया, किंतु एकवेर शिखा यज्ञोपवीतके त्यागनेसे भूमिकी प्रदक्षिणा करनी लिखी है, यादवको यह सोच पडी कि, मैं भूप्रदक्षिणा किस तरह करूं? इसी चिंतामें यादवको निद्रा आगई, स्वप्नमें भगवान् देवराजने आज्ञा दी कि, 'यादव! तू श्री रामानुजकी प्रदक्षिणा करनेसे भूप्रदक्षिणाके फलको प्राप्त होगा' यह भगवद्वचन सुन यादव स्वामीकी सेवामें गया, जाकर साष्टांग कर प्रदक्षिणा करके क्षमा मांगी और निवेदन किया कि 'मैं शरणागतहूं, हे शरणागतवत्सल। मुझे अपना बनाओ। आल्वाररत्ननेभी यादवका उपनयन कर पंच संस्कार कर वैष्णव बनादिया ॥

तदनंतर एक दिन श्रीरंगनाथने आल्वारको बुलाया, श्रीआल्वारने कावेरीमें स्नान करके भगवत्के दर्शन किये

भगवत्ने आल्वारको बहुत कुछ वैभव कृपा किया, स्वामी भी श्रीरंगनाथकी सेवाके लिये कुछ काल श्रीरंगमेंही रहे ॥

तदनंतर श्रीमहापूर्णस्वामीने आल्वारसे कहा कि, 'अब गोष्ठीपुरमें गोष्ठीपूर्णस्वामीके समीप जाओ उनसे भी कुछ रहस्यका ग्रहण करो'। स्वामी, निजस्वामीकी आज्ञा पातेही कुछशिष्यों सहित गोष्ठीपुरको प्रस्थान किया। वहां पहुँच श्रीगोष्ठीपूर्णस्वामीको साष्टांग कर उनसे रहस्यविशेषका उपदेश लिया। उपदेश लेतेही आल्वारने उस गोप्यरहस्यको सबसे कहदिया। और आप श्रीगोष्ठीपूर्णस्वामीके निकट जाकर करजोर निवेदन किया कि, "स्वामिन् प्रभो आपने इस इहस्यको गुप्त रखनेकी आज्ञा दीथी मैंने वह रहस्य लोकोपकारार्थ सबसे कहदियाहै इस हेतु निज आज्ञाके उल्लंघनका मुझे दंड दीजिये"। श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामीने श्रीआल्वारकी कृपालुताको देख गलेसे लगा लिये और कहा कि 'रामानुज! तू सर्वजनरक्षक है'॥

तदनंतर श्रीगोष्ठीपूर्णस्वामीसे आज्ञा लेकर स्वामी श्रीमाल्यधरमुनिके समीप आये और विनयपूर्वक उनसे आल्वारोंके प्रबंध पढे। तदनन्तर श्रीमाल्यधरमुनिसे आज्ञा लेकर श्रीलक्ष्मणमुनि श्रीरंगमें पधारे। श्रीरंगमें रहकर अपने शिष्योंको वेदांत पढाते रहे ॥

तदनंतर काशिपुरीसे एकदंडी आया, स्वामीके साथ शास्त्रार्थ हुआ आचार्य शिरोमणिने एक दंडीको पराजितकर निजशिष्य बनाय त्रिदंडी बनादिया ॥

तदनन्तर कुछ शिष्योंको साथ ले आचार्यने पृथ्वी प्रदक्षिणाका आरंभ किया। जो जो भगवद्धाम हैं उन सबमें पधारते रहे। और कुमतिलोगोंको पराजितकर वैष्णवधर्मको उज्ज्वल करते रहे। और काशी, प्रयाग, मथुरा, अयोध्या, द्वारावति, बदरिकाश्रम, नैमिषारण्य और हरिद्वार, इत्यादि भगवद्धामोंमें वैष्णवधर्मरक्षार्थ कुछ अपने शिष्य भी छोड दिया। इसी कालमें आल्वार शारदापीठमें पहुँचे श्रीआल्वारको आतेदेख शारदाजी स्वयं लेने गईं। आल्वारने अपने रचेश्रीभाष्यग्रंथ शारदाजीको दिखाये, शारदाजीने ग्रंथ देख शिरपर चढाय आल्वारकी प्रशंसा की और 'भाष्यकारः' ऐसा नाम भी दी ॥

वहांसे स्वामीभी श्रीपुरुषोत्तमपुरीमें पधारे वहां श्रीजगन्नाथजीके साष्टांगकर स्तुति की। वहांसे भगवद ज्ञा पाकर कूर्माचलको पधारे वहां श्रीकूर्मका पूजनकर सिंहाचल, तोताद्रि, श्रीनृसिंहाचल और काकुलपुर होते हुये श्रीवेंकटाद्रिको पधारे। वहां जब पहुँचे तो श्रीवेंकटाद्रिपर कोई भी अरोहण नहीं करताथा इस हेतु स्वामीका विचारभी आरोहणका न था, किंतु शिष्यलोगोंकी बहुत प्रार्थनासे स्वामी पर्वतपर चढे। ऊपर जाकर

भगवत्के दर्शन कर श्रीशैलपूर्णस्वामीके दर्शनकिये और स्वामिपुष्करिणीमें स्नानकर कुछ काल भगवन्नाम स्मरण करते रहे । कोई ऐसा भी कहते हैं कि, स्वामीने पादोंसे वेंकटाद्रिपर आरोहण नहीं किया किंतु घुटनोंसे आरोहण किया और ऊपर जाकर आगेको पैरोंसे पर्वतपर चढनेकी मनुष्यमात्रके लिये भगवत्से क्षमा मांग पर्वतारोहणकी छुट्टी देदी उसीदिनसे वेंकटाद्रिपर लोग चढने लगेहैं ॥

आल्वारने वहां तीनदिन निवास कर श्रीशैलपूर्णस्वामीसे श्रीरामायणके रहस्य ग्रहण कर सेतुबंधको प्रस्थान किया । मार्गमें और सेतुबंधपर कुमतिलोगोंको पराजितकर वैष्णवधर्मस्थापन कर पुनः स्वामी श्रीरंगमें जाविराजे ॥

इस कालमें स्वामीने श्रीभाष्यरचकर निजशिष्योंको पढाया । तदनंतर कुछ काल श्रीरंगमें निवासकर श्रीआल्वारने सुषुम्नामार्गसे प्राणत्याग परमधाममें जा निवास किया ॥ इति श्रीरामानुज स्वामीकी कथा ।

इति श्रीआल्वारचरितामृत समाप्त ॥

अन्यत्रसे प्राप्त परिशिष्ट।

श्रीरामानुजस्वामीका जन्म शके ९३८ का एतावता जन्म संवत् १०७३ प्रतीत होता है। आयु १२० वर्षकी ॥

श्रीमहापूर्णस्वामीका जन्म लगभग संवत् १०४२का प्रतीत होता है, आयु इनकी १०५ वर्षकी हुई। संवत् ११४७ के लगभग परमधामको पधारे ॥

श्रीगोष्ठीपूर्णस्वामीके जन्म आयुप्रभृतिभी श्रीमहापूर्णस्मामिके तुल्य जानो ॥

श्रीकुलशेखरस्वामीकी आयु ६७ वर्षकी ॥

श्रीयोगिवाहनस्वामीका जन्म १२० कलियुग बीतनेपर हुआ। इनकी आयु ५० वर्षकी ॥

श्रीपरकालाल्वारका जन्म २०७ वर्ष कलियुग भुक्तनेपर हुआ इनकी आयु १०५ वर्षकी ॥

श्रीशठकोपाल्वारकी आयु ३५ वर्षकी जिसमेंसे १६ वर्ष पिताके घर रहे तदनंतर इम्लीकी खोडमें विराजे॥

श्रीयामुनाचार्यकी आयु १२५ वर्षकी ॥

श्रीनाथमुनिस्वामीका जन्म ३००० वर्ष कलियुग बीत जानेपर हुआ। इनकी आयु ३३० वर्षकी ॥

श्रीभक्तांघ्रिरेणुजीका जन्म १०८ वर्ष कलियुग गये पर इनकी आयु १०५ वर्षकी ॥

श्रीसरोयोगिस्वामीका जन्म ८६०१०० अष्ट लक्ष साठ सहस्र एकसौ वर्ष द्वापर बीतनेपर हुआ । एतावता ८६४००० द्वापर वर्षमान माननेसे, कलिकालारंभसे ३९०० वर्ष पूर्व इनका जन्म हुआ । श्रीसरोयोगिस्वामीके जन्मसे दूसरे दिन श्रीभूतयोगी स्वामीका तीसरे दिन श्रीमहद्योगि स्वामीका जन्म हुआ ॥

इनतीनों योगीश्वरोंकी आयु ३३२५ तीन सहस्र तीनसौ पच्चीस वर्षकी, एतावता ५७५ वर्ष कलिसे पूर्व इनने भूलोकको त्यागा ॥

श्रीभक्तिसारस्वामीकी आयु ७००० वर्षकी ॥

मध्ये कलिद्वापरयोः सहस्रवर्षाणि सप्तैव विहृत्य भूमौ ।
सौदर्शनीं मूर्तिमुपागतं च तं भक्तिसारं शरणं प्रपद्ये ॥

श्रीः ।

आल्वारोंका जन्मस्थान–तथा नक्षत्र ।

१ श्रीसरोयोगीस्वामि कांचीपुरीमें पांचजन्यावतार, आश्विनके विष्णुनक्षत्रके दिन प्रकट हुये ॥

२ श्रीभूतयोगीआल्वार, मल्लपुरमें कौमोदकीगदावतार आश्विनके वसुनक्षत्रके दिन प्रकटे ॥

३ श्रीमहद्‌योगी स्वामी मयूरनगरमें नंदकावतार आश्विनके शतभिषक् नक्षत्रके दिन प्रकटे ॥

४ श्रीभक्तिसारस्वामी महीसारपुरमें सुदर्शनावतार पौषके मघानक्षत्रके दिन प्रकट हुये ॥

५ श्रीशठकोपाल्वार कुरुकानगरीमें श्रीविष्वक्सेनावतार वैशाखके विशाखा नक्षत्रके दिन प्रादुर्भूत हुये ॥

६ श्रीकुलशेखराल्वार चोलपुरीमें कौस्तुभावतार माघके पुनर्वसुनक्षत्रके दिन जन्मे ॥

७ श्रीपद्मिनीजी निचुलापुरीमें श्रीलक्ष्मीजीका अवतार उत्तरानक्षत्रके दिन प्रकटी ॥

८ श्रीयोगिवाहनस्वामी निचुलापुरीमें श्रीवत्सावतार कार्तिकके रोहिणीनक्षत्रके दिन प्रकटे ॥

९ श्रीभक्तांघ्रिरेणुस्वामी मंडननगरमें वनमालावतार मार्गशीर्षके महेंद्रनक्षत्रके दिन प्रकटे ॥

१० श्रीविष्णुचित्तालवार धन्वीपुरीमें गरुडावतार ज्येष्ठमासके स्वातीनक्षत्रके दिन प्रकटे। इनका द्वितीयनाम भट्टनाथभी है।

श्रीगोदाजी भूदेवीका अवतार आषाढके पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके दिन श्रीविष्णुचित्तस्वामीके तुलसीवनमें प्रकटी॥

११ श्रीपरकालालवार कलापूर्णपटननगरमें शार्ङ्गावतार कार्तिकके कृत्तिकानक्षत्रके दिन जन्मे॥

१२ श्रीरामानुजस्वामी भूतपुरीमें शेषावतार चैत्रके आर्द्रानक्षत्रके दिन जन्मे॥ इति॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गङ्गाविष्णुश्रीकृष्णदास,
'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
'श्रीवेंकटेश्वर' स्टीम्-प्रेस,
खेतवाडी-बम्बई.

नाम.	की.
भवसन्तारणोपनिषद्–स्वामिश्रीरामप्रपन्नजीकृत भाषाटीकासहित।	....
यतीन्द्रमतदीपिका–(शारीरकपरिभाषा)सटिप्पण	....
रहस्यत्रय–भाषाटीकासहित.	....
रामपद्धति–रामपटल–सिद्धान्तपटल–चौबीसगायत्री–मन्त्रमुक्तावली–(इन पांचोका एकत्र गुटका) चारों सांप्रदायी वैष्णवोपयोगी.	...
रामपटल–भाषाटीकासहित। ...	...
लघुरामपद्धति–भाषाटीकासहित ...	...
वज्रकुठार	...
विषयवाक्यदीपिका–श्रीरङ्गरामानुजमुनिप्रणीत अर्थात् विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त श्रीभाष्योदाहृतोपनिषद्वाक्यविवरण टिप्पणीसहित	...
संप्रदायकल्पद्रुम–	....

(बडा सूचीपत्र अलगहै, मँगाकर देखो.)

पुस्तकें मिलनेका ठिकाना–

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम्–प्रेस.

कल्याण–बंबई.